ISSN 2319 - 2798
अंक-12, 2022

हिमप्रभा

राजभाषा पत्रिका

गो0ब0 पंत राष्ट्रीय हिमालयी पर्यावरण संस्थान
(पर्यावरण वन एवम् जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, भारत सरकार का स्वायत्तशासी संस्थान)
कोसी–कटारमल, अल्मोड़ा
Website:http://gbpihed.gov.in

हिमप्रभा

राजभाषा पत्रिका

गो0ब0 पंत राष्ट्रीय हिमालयी पर्यावरण संस्थान

(पर्यावरण वन एवम् जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, भारत सरकार का स्वायत्तशासी संस्थान)

कोसी–कटारमल, अल्मोड़ा

Website:http://gbpihed.gov.in

राजभाषा पत्रिका
हिमप्रभा

वर्ष 2022

संरक्षक/अध्यक्ष, राजभाषा कार्यान्वयन समिति
प्रो0 सुनील नौटियाल, निदेशक

राजभाषा कार्यान्वयन समिति/सम्पादक मंडल
ई0 महेन्द्र सिंह लोधी —सदस्य
डा0 आशीष पाण्डे —सदस्य
डा0 सुबोध ऐरी —सदस्य
श्री0 सजीष कुमार —सदस्य
श्री0 महेश चन्द्र सती —सदस्य

कार्यकारी सम्पादक
डा0 सुबोध ऐरी
09411525550
airisubodh@gmail.com

सहयोग
श्री विपिन शर्मा

विशेषः
हिमप्रभा में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों/आकड़ों आदि के लिए लेखक पूर्ण रुपेण स्वयं उत्तरदायी हैं। राजभाषा कार्यान्वयन समिति का उनसे सहमत होना आवश्यक नही है।

प्राक्कथन

भाषा वह साधन है जिसके माध्यम से प्राणी अपने भावों को दूसरे पर अभिव्यक्त करता है। भाषा ऐसी दैवीय शक्ति है, जो मानव को मानवता प्रदान करती है। विश्व की समृद्ध भाषाओं में हिन्दी का अपना महत्वपूर्ण स्थान है। हिन्दी भाषा जनसंख्या के आधार पर चीनी और अंग्रेजी के बाद विश्व की तीसरे नम्बर पर है। समूचे भारतीय हिमालय क्षेत्र के अधिकांश भू–भाग में हिन्दी भाषा बोली जाती है और हमारा संस्थान सम्पूर्ण भारतीय हिमालय में पिछले तीन दशकों से यहाँ की मूलभूत समस्याओं तथा पर्यावरणीय क्षेत्र में शोध एवं विकास कार्य कर रहा है। जो हिन्दी भाषा के प्रयोग के बगैर संभव नहीं है। क्योंकि हिन्दी भाषा वैज्ञानिक समुदाय तथा इस क्षेत्र की जनता के बीच की दूरी को कम करता है। जनना के कल्याण की शोध उपलब्धियों को जन–सामान्य तक त्वरित गति से पहुचाने और अससे संबन्धित प्रौद्योगिकी हस्तांतरण के लिए हिन्दी भाषा ही सशक्त माध्यम है। किसी भी संस्थान के कार्यक्रमों की सफलता तभी मुमकिन है जब उसकी विकासत्मक उपलब्धियों को जनता समझे और स्वीकार करे। इसके लिए आवश्यक है उन महत्वपूर्ण जानकारीयों को जनता की भाषा में प्रस्तुत किया जाए। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए संस्थान जनता से जुड़े अपने कार्यक्रमों, प्रचार सामाग्रियों को हिन्दी भाषा में तैयार करता है।

संस्थान विगत एक दशक से अपनी शोध सम्बंधी उपलब्धियों तथा ज्ञान को जनता तक पहुचाने हेतु राजभाषा पत्रिका "हिमप्रभा" का प्रकाशन प्रतिवर्ष करता आ रहा है। इस पत्रिका में वैज्ञानिक तथा शोधछात्र हिमालय क्षेत्र से संबन्धित अपने शोध कार्यों को प्रकाशित करता है। इस पत्रिका के 12वें अंक को पाठकों को सौंपते हुए मुझे अपार हर्ष हो रहा है। जिसमें हिमालय के अलग अलग क्षेत्रों के लेखकों ने विभिन्न विषयों पर अपने लेख प्रस्तुत किए हैं। मैं आशा करता हूँ इन लेखों को पढ़कर आप सभी लोग लाभान्वित होंगे।

पत्रिका के प्रकाशन हेतु संस्थान की राजभाषा समिति के सदस्यों, रचनाकारों और संपादक को बधाई देता हूँ और आशा करता हूँ इससे संस्थान को राजभाषा के प्रति अपने दायित्वों के निर्वाहन में सफलता मिलेगी। अतः "हिमप्रभा" पत्रिका को और प्रभावशाली बनाने हेतु राजभाषा समिति आपके सुझावों का स्वागत करती है।

शुभकामनाओं सहित।

प्रो0 सुनील नौटियाल,
निदेशक

विलुप्ति के कगार पर पहुँच चुका है ख़ूबसूरत जीव लाल पांडा

सीताराम गुप्ता, ए0 डी0 106-सी, पीतम पुरा, दिल्ली - 110034

हमारी धरती के अस्तित्व के लिए जैव विविधता अनिवार्य है और इस जैव विविधता को बनाए रखने के लिए प्रकृति ने जीव–जंतुओं को विषम परिस्थितियों से बचाए रखने के लिए अनेक उपहार दिए हैं। पानी में तैरने वाले जीवों को ऐसा शरीर प्रदान किया है जिससे वे लगातार पानी में रहने के कारण गल–सड़ न जाए। जहाँ बहुत ठंड होती है वहाँ अत्यधिक सर्दी से बचाने के लिए उनके शरीर को कोमल–कोमल रोओं से ढक दिया है। धरती पर एक ही प्रजाति के जीव अधिक न हो जाएँ इसके लिए प्रकृति में ऐसी भोजन शृंखला विकसित है जिससे जीवों में संतुलन के साथ–साथ जैव विविधता भी बनी रहे। धरती पर बहुत सारे जीव एक दूसरे को अपना आहार बनाते हैं लेकिन उससे किसी प्रकार का असंतुलन अथवा अव्यवस्था उत्पन्न नहीं होती। लेकिन मनुष्य अपने लोभ–लालच के वशीभूत होकर इस धरती पर पाए जाने वाले जीव–जंतुओं को नष्ट करके प्रकृति के संतुलन को नष्ट कर देता है। किसी जीव को वह भोजन के लिए मांस प्राप्त करने के लिए मार डालता है तो किसी को उनके दूसरे अंगों को प्राप्त करने के लिए।

मनुष्य की इस प्रवृत्ति के कारण आज अनेक जीव–जंतु या तो लुप्त हो चुके हैं या लुप्त होने के कगार पर हैं। हमारे देश के पूर्वोत्तर के कुछ राज्यों में पाया जाने वाला लाल पांडा भी ऐसे जीवों में से एक है। लाल पांडा एक अत्यंत आकर्षक जानवर है। यह भारत के सिक्किम, असम, दार्जिलिंग व उत्तरी अरुणाचल के जंगलों में मिलता है। भारत के अतिरिक्त यह चीन, नेपाल, भूटान, लाओस तथा म्याँमार के पहाड़ी जंगलों में भी पाया जाता है। लाल पांडा प्रायः समुद्र तल से 1500 मीटर से लेकर 4000 मीटर की ऊँचाई तक मिलता है। लाल पांडा का वज़न आम तौर पर तीन से छह किलोग्राम तक होता है और इसकी लंबाई दो से ढाई फुट तक होती है। लाल पांडा की पूँछ इसकी लंबाई से थोड़ी सी ही कम अर्थात् लगभग दो फुट तक लंबी पाई जाती है। लाल पांडा को बाँस की हरी–हरी पत्तियाँ और कोमल–कोमल टहनियाँ खाना बहुत अच्छा लगता है। बाँस की पत्तियों और कोमल टहनियों के अतिरिक्त लाल पांडा फल–फूल, कीड़े–मकोड़े व पक्षियों के अंडे भी खाता है।

लाल पांडा को अंग्रेज़ी में रेड पांडा (Red Panda) कहते हैं। इसका वैज्ञानिक नाम आइल्यूरस फल्गेंस (Ailurus fulgens) है। लाल पांडा एक स्तनपायी जानवर है। लाल पांडा का रंग लालिमा लिए हुए गहरा भूरा अथवा लाल होता है। इस रंग के कारण ही इसका नाम लाल पांडा पड़ा है। लाल पांडा का शरीर ऊपर से लाल होता है लेकिन इसके पैर व पेट काले रंग के होते हैं। इसके शरीर पर काली और सफेद धारियाँ होती हैं व इसकी पूँछ पर भी छल्ले बने होते हैं। इसके पूरे शरीर पर ही नहीं पैरों के तलवों पर भी रोएँ होते हैं जो इसे ऊँचे पहाड़ों पर स्थित जंगलों में होने वाली ठंड से बचाते हैं। इसके यही ख़ूबसूरत रोएँ अथवा फर वाली त्वचा उसके विनाश का कारण बन जाती है। प्रकृति ने उसे उसकी सुरक्षा के लिए जो उपहार दिया है मनुश्य उससे वह उपहार छीन लेता है जो किसी भी तरह से उचित नहीं कहा जा सकता।

एक लाल पांडा का औसत जीवनकाल चौदह वर्ष होता है। कुछ लोग लाल पांडा को भालू के परिवार का सदस्य मानते हैं लेकिन ये सही नहीं है। काले–सफेद विशाल पांडा से भी इसका कोई संबंध नहीं है काले–सफेद विशाल पांडा से अलग वंश का है लाल पांडा। लाल पांडा आइल्यूरस वंश का एकमात्र

जीवित सदस्य है। आकार में ये एक बड़ी बिल्ली से थोड़ा बड़ा होता है इसलिए इसे रेड कैट बीयर या रेड बीयर कैट भी कहा जाता है। भालू एक भारी भरकम और ख़तरनाक जानवर होता है। लाल पांडा भालू की तरह भारी भरकम और ख़तरनाक न होकर एक छोटा सा और शांत स्वभाव वाला शर्मीला जीव होता है जो प्रायः अकेले रहना पसंद करता है। इन्हें पेड़ों के तनों पर आराम से लेटे हुए देखा जा सकता है। लाल पांडा प्रायः पेड़ों की ऊँची चोटियों पर रहता है व अपना अधिकतर समय पेड़ों पर ही बिताता है और पेड़ पर ही सोना पसंद करता है इसलिए इसे वृक्षावासी जीव कहा जा सकता है। लाल पांडा ज़्यादातर रात के समय ही अपने निवास स्थान से बाहर निकलता है। यह ज़मीन पर बहुत धीरे–धीरे चलता है।

लाल पांडा की सूरत लोमड़ी से भी मिलती है। इसकी सूरत लोमड़ी से मिलने और इसके शरीर पर लाल रोएँ हाने के कारण कुछ स्थानों पर इसे फायर फॉक्स (Fire Fox) नाम से भी पुकारा जाता है। लाल पांडा को ब्राइट पांडा (Bright Panda), लेसर पांडा (Lesser Panda), पेटिट पांडा व पूनिया नामों से भी पहचाना जाता है। आइल्यूरस फल्गेंस अर्थात् लाल पांडा की प्रमुख रूप से दो प्रजातियाँ मिलती हैं। एक प्रजाति है हिमालयन रेड पांडा जो भारत, नेपाल, भूटान, लाओस व म्याँमार में पाई जाती है और दूसरी प्रजाति है चायनीज़ रेड पांडा जो मुख्य रूप से दक्षिणी चीन व म्याँमार के कुछ भागों में मिलती है। आज दुनिया में लाल पांडा बहुत कम संख्या में हैं और इस समय विलुप्ति के कगार पर है।

एक अनुमान के अनुसार पूरी दुनिया में केवल पंद्रह–सोलह हज़ार लाल पांडा ही बचे हैं जिनमें से पाँच से छह हज़ार भारत में हैं और छह से सात हज़ार चीन में हैं। इसके अतिरिक्त नेपाल में इनकी संख्या केवल पाँच–छह सौ के लगभग है। कुछ स्रोतों के अनुसार पूरे विश्व में इनकी संख्या पाँच हज़ार के लगभग ही बची है। आज पूरी दुनिया में मनुष्यों की आबादी निरंतर बढ़ रही है। विश्व में लगभग नौ सौ करोड़ व अकेले भारत में सवा सौ करोड़ से भी अधिक लोग हो चुके हैं। फिर जंगली जावनरों की संख्या में लगातार कमी क्यों आ रही है? इसका सीधा सा कारण है मनुष्य व जंगली जीवों के अनुपात में असंतुलन व निरंतर घटते जंगल। मनुष्य अपने आवास और भोजन के लिए जंगलों को नष्ट कर रहा है। लाल पांडा भी मनुष्य की इस प्रवृत्ति का शिकार होकर विलुप्ति के कगार पर पहुँच चुका है।

पांडा को अपने निवास के लिए हरे–भरे जंगल व भोजन के लिए उनमें उगने वाले बाँस की नरम–नरम पत्तियाँ चाहिए लेकिन लगातार घटते जंगलों के कारण उनसे उनका प्राकृतिक परिवेश और भोजन ही नहीं छिनता जा रहा है अपितु जैसे–जैसे इनके आवास का दायरा सिकुड़ता जा रहा है इसके साथ ही इनकी सुरक्षा भी कम होती जा रही है और इसी अनुपात में उनकी संख्या निरंतर कम होती जा रही है। इनकी संख्या में अत्यधिक कमी का एक अन्य कारण है इनका शिकार किया जाना। इसके शिकार पर पूर्ण प्रतिबंध है लेकिन इसकी महंगी कीमत के कारण लोग चोरी से इसका शिकार करते रहते हैं। इसकी ख़ूबसूरत फरदार खाल के लिए इसका बेरहमी से शिकार किया जाता रहा है।

मनुष्य की नवाबी आदतें भी इसके विलुप्त हो जाने का बहुत बड़ा कारण है। मनुष्य स्वयं को सरदी से बचाने व सुंदर दिखने के लिए इसका शिकार करके इसका सुंदर फर प्राप्त कर लेता है। चीन में इसके फर की बहुत मांग होती है। चीन में नवविवाहिताएँ लाल पांडे के फर से बना हैट पहनती हैं क्योंकि वहाँ इसे सौभाग्य का प्रतीक माना जाता है लेकिन इस गलत धारणा के चलते लाल पांडा के अस्तित्व पर संकट के बादल मंडराने लगे हैं जिनके परिणाम हमारे सामने हैं। भारतीय वन्यजीव संरक्षण अधिनियम 1972 की अनुसूची–1 के तहत लाल पांडा कानूनी संरक्षण प्राप्त जीव है अर्थात् आज देश में इनके शिकार पर पूर्ण प्रतिबंध है। लेकिन दूसरे बड़े जंगली जानवरों द्वारा इनका शिकार किए जाने के कारण भी इनकी संख्या पर बुरा प्रभाव पड़ता है। जंगली कुत्ते और हिम तेंदुए इसके सबसे बड़े शत्रु हैं।

लाल पांडा सिक्किम राज्य का राज्य पशु भी है। क्योंकि लाल पांडा की संख्या बहुत कम है और ये लुप्त होने के कगार पर स्थित है अतः इसे हमेशा के लिए लुप्त होने से बचाने के लिए लोगों में जागरूकता पैदा करना अनिवार्य है। लाल पांडा को बचाने के लिए लोगों में इस विषय में जागरूकता उत्पन्न करने के लिए हर साल सितंबर मास के तीसरे शनिवार को अंतर्राष्ट्रीय लाल पांडा दिवस (International Red Panda Day) मनाने की शुरूआत की गई है। वर्ष 2020 में उन्नीस सितंबर को पहला अंतर्राष्ट्रीय लाल पांडा दिवस मनाया गया। जब कोई एक जीव अथवा वनस्पति लुप्त हो जाती है तो उसके साथ दूसरे अनेक जीव भी नष्ट अथवा लुप्त हो जाते हैं। यह स्थिति पर्यावरण के लिए भी बहुत घातक है। हमें अपनी जैव विविधता व अपने पर्यावरण को नष्ट होने से बचाने के लिए भी इस ख़ूबसूरत और मासूम से जीव को लुप्त होने से बचाने और इनकी संख्या में वृद्धि करने के लिए हर संभव प्रयास करने चाहिएँ।

सर्पगन्धा की खेती: पर्वतीय क्षेत्रों में आर्थिकी का साधन

संजय कुमार, अषोक कुमार भार्मा एवं किरन पन्त,

गो0 ब0 पन्त कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कृषि विज्ञान केन्द्र ढ़करानी, देहरादून-248 142 उत्तरांखण्ड

सर्पगन्धा (रौबोल्फिया सर्पेन्टिना/Rauwolfia serpentina) भारत में सभी प्रकार की जलवायु में पाया जाता है। यह एक बहुवर्षीय वनोषधि है जिसके पौधे की ऊॅचाई लगभग 60–150 सेमी0 तक होती है। इसके प्रत्येक पर्वपर 3 से 4 पत्तियॉ चक्राकार अवस्था में लगी होती है, तथा फूल गुच्छो में लगते है जिनका रंग सफेद या हल्का गुलाबी होता है। सर्पगन्धा के फल, मटर के दाने के समान गोल होते है तथा इसकी जडें टेढी–मेढी आकृति वाली होती है।

यह एपोसायनेसी (Apocynaceae) कुल का पौधा है। जर्मनी के एक चिकित्सक रौबोल्फ के नाम पर इसका नाम रौबोल्फिया रखा गया तथा इसकी जडों का आकार सर्प के समान एवं इसकी जडों का उपयोग सर्पविषरोधी के रूप में प्रयोग होने के कारण इसकी प्रजाति का नाम सर्पेटिना पडा अतः इसका लैटिन नाम रावौल्फिया सर्पेटिना रखा गया।

सर्पगन्धा (रौबोल्फिया सर्पेटिना)

सर्पगन्धा में लगभग 1.7 से 3.0 प्रतिशत तक क्षारीय तत्व पाये जाते है इसमें प्रमुख तत्व रिसर्पीन, सर्पेन्टाइन, सर्पेन्टीनीन, अजमेलीन, अजमेनीसीन आदि एल्केलॉयड होते है इसलिए विश्व भर में रक्तचाप, अनिद्रा एवं मानसिक विकारों के निदान हेतु सर्पगन्धा को औषधि के रूप में उपयोग किया जाता है ।

उपयोगः सर्पगन्धा की जड़ें आर्थिक रूप से विभिन्न प्रकार की दुर्लभ आयुर्वेदिक औषधियों के निर्माण में प्रयुक्त होती है। इसकी जड़ें गन्धहीन एवं स्वाद में कड़वी होती है। सर्पगन्धा द्वारा निर्मित औषधियो में मुख्य रूप से सर्पगन्धायोग, सर्पगन्धावटी, सर्पिना टेबलेट, सर्पगन्धादि चूर्ण आदि प्रमुख है, जिसका प्रयोग मानव हित के लिए चिकित्सा में सफलता पूर्वक किया जा रहा है, साथ ही इन दवाओं के उपभोग से मानव स्वास्थ पर कोई दुष्प्रभाव भी नही पड़ता जिसके कारण इसकी मॉग देश में देशी एवं आयुर्वेदिक दवाई निर्माण हेतु निरन्तर बढ़ रही है। अतः सर्पगन्धा का अधिक उत्पादन करना समय की मॉग है और इस फसल को उगाने में कम लागत लगती है जिस कारण किसान पर्वतीय क्षेत्रें में इसकी खेती करने पर अच्छा लाभ ले सकते है व साथ ही भूमि की उर्वरा शक्ति में सुधार कर प्रति इकाई क्षेत्र की उत्पादकता बढाने में भी सफलता प्राप्त की जा सकती है। सर्पगंधा की भरपूर एवं गुणवत्तायुक्त उपज प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित सस्य विधियॉ अपनायी जा सकती है।

सर्पगन्धा/चन्द्रभागा के पारम्परिक उपयोग

- सर्पगन्धा/चन्द्रभागा के जड़ों एवं पत्तियों का उपयोग किया जाता है।
- आयुर्वेद में इसकी जड़ों को कृमिनाशक, कड़वा व तीखा बताया गया है। इसका उपयोग अल्सर, त्रिदोष और कीड़ो के काटने पर जहरीले प्रभाव के निवारण हेतु किया जाता है।
- इसकी जड़ों का काढ़ा कृत्रिम निंद्रादायक और पीड़ाहरण का कार्य करता है।

- महिलाओं में प्रसव के समय गर्भाशय संकुचन बढ़ाने के लिए, भ्रूण के आसानी से निष्कासन और आंतों के विकारों में जड़ों का काढ़ा पिलाना लाभदायक होता है।

- पौधों के पत्तियों का रस आंखों के कॉर्निया की पारदर्शिता को बढ़ाने में प्रयोग किया जाता है।

- इसके सूखे फलों का चूर्ण पीपली व अदरक के साथ खाने पर मासिकधर्म को नियमित करने का कार्य करता है।

- जड़ों का काढ़ा सीने में दर्द, यकृत, उदरविकार और रेबीज में प्रयोग करते है।

- अमरपोई की पत्तियों के साथ इसकी जड़ों के रस को सर्पदंश के उपचार में दिया जाता है तथा इसके पेस्ट को कटे हुए अंग पर लगाया जाता है।

- जड़ों के रस को गठिया रोग निदान में उपयोग करते है।

- मानसिक रूप से मंद रोगियों को अनिंद्रा के रोग निवारण में मुख्य निंद्रादायक औषधि मानी जाती है।

जलवायुः सर्पगन्धा की खेती मैदानी एवं पर्वतीय क्षेत्रों में सफलता पूर्वक की जा सकती है। इसके लिए उशण, उपोशण एवं शीतोशण तीनों प्रकार की जलवायु उपयुक्त रहती है। अच्छी पैदावार हेतु सूर्य के प्रकाश की अधिक तीव्रता एवं लम्बें दिनों की आवश्यकता होती है। पाले से बचाव के उपाय करने पर सर्दियो में भी बढ़वार हो जाती है।

भूमिः बलुई दोमट एवं अच्छी उर्वरता वाली भूमि सर्वोत्तम होती है। अन्य सभी प्रकार की मिट्टियों में भी इसकी खेती की जा सकती है। खेत में सिचांई एवं जल निकास की उचित सुविधा होनी चाहिए।

पौध तैयार करनाः इसकी खेती करने के लिए पहले बीजों से पौध तैयार की जाती है जिसके लिए एक भाग बालु, एक भाग सड़ी गोबर की खाद एवं दो भाग अच्छी मिट्टी को मिलाकर उसमें थोडी मात्रा में जैव अथवा रासायनिक कीटनाशक मिला देना चाहिए। इसके बाद पूरे मिश्रण को छान लें तथा मिश्रण प्लास्टिक की थैलियों में भरकर प्रत्येक थैली में 2–3 बीजों को 3–4 सेमी0 गहराई पर लगा दें। बुआई करते समय मिट्टी में प्रर्याप्त नमी होनी चाहिए। सामान्यतः बीजों का जमाव लगभग 6 से 8 दिनों में हो जाता है तथा उचित देखरेख करने पर 35–45 दिन की अवधि वाली पौधशाला रोपाई करने के लिए तैयार हो जाती है।

खेती की तैयारीः खेत तैयारी जून माह में की जाती है इसके लिए खेत में कम से कम 2 गहरी जुताईयॉ अवश्य करनी चाहिए तथा खेत का यथा सम्भव समतलीकरण कर देना चाहिए। यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि मिट्टी अच्छी प्रकार भुरभुरी हो जाएं एवं पहली फसल के अवशेष सतह पर दिखाई न दें। इसके बाद छोटी–छोटी क्यारियां बनाकर नमी बनाऐ रखने के लिए एक सिचांई (पलेवा) करनी चाहिए तत्पश्चात गोबर की खाद खेत में मिला देनी चाहिए।

खाद एवं उर्वरकः अच्छी बढवार एवं गुणवत्तायुक्त उत्पादन प्राप्त करने हेतु इस फसल में रासायनिक खादों का प्रयोग सीमित मात्रा में करना चाहिए, क्योकि सर्पगन्धा की जडें आर्थिक रूप से प्रयोग में लाई जाती है अतः इसके लिए जैविक खादों जैसे गोबर की खाद, कम्पोस्ट, खलियॉ एवं हरी खाद का उपयोग सर्वोत्तम रहता है। अतः 20–25 टन गोबर की सडी हुई खाद प्रति हेक्टेयर की दर से रोपाई से 15 दिन पूर्व खेत में अच्छी तरह मिला देनी चाहिए । रोपाई से पूर्व 25 नत्रजन किग्रा0, 60 किग्रा0 फास्फोरस (130 किग्रा0 डी.ए.पी.) एवं 40 किग्रा0 पोटाष (67 किग्रा0 एम.ओ. पी.) प्रति है0 की दर से कूंड में डालें।

lixU/kk dh [ksrh dk okf"kd dySMj

बीज की बुआई का समय	अप्रैल – मई /चैत–बैसाख
रोपाई का समय	जून– जुलाई / जयेष्ठ–आसाढ़
फूल आने का समय	मई– सितम्बर / बैसाख– आश्विन
फल आने का समय	जुलाई –नवम्बर / आसाढ़– मंगशीर
जड़ो एवं बीजों की तुड़ाई व खुदाई	अक्तुबर– फरवरी / कार्तिक– फाल्गुन

पौध रोपणः पौध की रोपाई के लिए जुलाई सर्वोत्तम रहता है। इसके लिए पौधे को सावधानी पूर्वक अलग करके 60 सेमी0 की दूरी पर बने कूड़ में पौधे से पौधे की दूरी 45 सेमी0 रखते हुए रोपाई करते है तथा रोपाई के बाद हल्की सिचाई अवश्य करनी चाहिए। खेत में अधिक समय तक पानी खड़ा नही रहना चाहिए, पानी रूकने से जडों की वृद्वि पर प्रतिकूल प्रभाव पडता है। अतः जल निकास का उचित प्रबन्धन रखें। खड़ी फसल में भूमि एवं फसल की आवश्यकतानुसार सामान्यतः 12–15 दिन के अन्तराल पर हल्की सिंचाई करते रहे।

खरपतवार नियन्त्रणः फसल को खरपतवार मुक्त रखा जाना अच्छी उत्पाकता के लिए अतिआवश्यक रहता है अतः प्रथम निराई रोपाई के बाद 20–25 दिन पर एवं दूसरी निराई 45–50 दिन की अवस्था पर करनी चाहिए। फसल की बढ़वार वाली अवस्था में समय–समय पर हल्की गुडाई भी करते रहना चाहिए जिससे प्रर्याप्त नमी बनी रह सके। चूंकि सर्पगन्धा औषधीय गुणों वाला पौधा है अतः रासायनिक खरपतवारनाशी का प्रयोग करने की सिफारिश नहीं की जाती है।

कीट प्रबन्धनः यदि भूमि में दीमक या सफेद गिडार (व्हाइटगर्ब) का प्रकोप हो तो क्लोरपायरीफास 20 ईसी0 की 3–4 ली0 अथवा इमिडाक्लोप्रिड 17.8 ईसी0 1.0 ली0 मात्रा को 25–30 किग्रा0 बालू या राख में मिलाकर प्रति है0 की दर से उचित नमी की अवस्था पर छिडकना चाहिए। सर्पगन्धा की फसल में अन्य कीटों की समस्या प्रायः नही पाई जाती है। रोपाई से पूर्व खेत में नीम की खली 8–10 कु0/है0 मिलाना उपयुक्त रहता है।

रोग नियन्त्रणः सामान्यतः इस फसल में रोगों के संक्रमण की समस्या बहुत कम होती है। कभी–कभी पर्ण चित्ती एवं जड सड़न का प्रकोप हो सकता है, जिसकी रोकथाम हेतु नीम तेल 1500 मिली0 अथवा कवकनाशी डायथेन एम–45 की 800 ग्रा0 मात्र/है0 को 500 ली0 पानी में घोलकर छिडकाव करना चाहिए।

अन्त फसल उगानाः सर्पगन्धा के पौधे की वृद्वि धीरे –धीरे होती है, तथा जड़ों की खुदाई योग्य फसल लगभग 18–20 माह में तैयार होती है। इसलिए इसकी खेती के साथ –साथ दो पंक्तियों के मध्य कम अवधि वाली घरेलु/स्थानीय मॉग पूर्ति वाली फसलें उगाकर अतिरिक्त आय प्राप्त की जा सकती है। इनमें मुख्य रूप से अदरक ,हल्दी, लहसन, सफेद मूसली तथा सब्जियॉ सर्पगन्धा के साथ सफलता पूर्वक उगाई जा सकती है। इस प्रकार प्राकृतिक संसाधनों का भी सदुपयोग करने का अवसर उपलब्ध होगा तथा अधिक आय अर्जित की जा सकती है जो पलायन की समस्या को रोकने एवं कृषक परिवारों की आयवृद्वि परिकल्पना को साकार करने में सहायक सिद्व होगी।

बीज एकत्रित करनाः एक वर्ष बाद सर्पगन्धा के पौधो पर फूल आने पर बीज बनने शुरू हो जाते है। इसके फल मटर के समान होते है जो पकने पर लाल एवं बाद में काले हो जाते है इस समय बीजों को तोड कर किसी बर्तन में एक दो दिन के लिए रख देते है। ताकि बीजों के ऊपर का छिलका/गूदा गल जाए फिर बीजो को हाथों से मसलकर पानी से साफ करते है। सूख जाने पर इन्हें अच्छी प्रकार बन्द कर नमी रहित स्थान पर भंडारित करना चाहिए।

जड़ों की खुदाईः सर्पगंन्धा की खुदाई जनवरी–फरवरी माह में की जाती है अतः खुदाई के 8–10 दिन पूर्व एक सिचांई करनी चाहिए ताकि जड़ें पूर्ण रूप में आसानी से निकाली जा सके। खुदाई से पूर्व पौधों को भूमि की सतह से थोडा ऊपर से काट देते है इसकी जडें गहराई तक जाती है अतः खुदाई कम से कम 50–55 सेमी0 गहराई तक करनी चाहिए। जडों को सावधानी पूर्वक निकालकर पानी से धुलाई करनी चाहिए। धुलाई करते समय यह ध्यान रखें कि जडों का छिलका अलग न होने पाये इसके बाद जडों छाया में सुखाकर नमी रहित स्थानो पर भंडारित करे।

उपज एवं आयः उन्नत सस्य विधि द्वारा सर्पगन्धा की खेती करने पर लगभग 50–55 किग्रा0 बीज तथा 20 कु0 शुष्क जड़े प्रति है0 प्राप्त होती है, जिससे लगभग एक लाख से दो लाख रू0 तक की शुद्व आय अर्जित की जा सकती है ।

LkixU/kk dk LoLFk ik/kk

LkixU/kk dh tM

LkixU/kk dk cht ,o ikÅMj

उत्तराखण्ड के उच्च हिमालयी क्षेत्रें में उगने वाली पारम्परिक राजमा (फैसेयोलस वल्गैरिस) की कृषि तथा उपयोगिता

योगिता बिष्ट[1], अरुण कुमार जुगरान[1], अजय वीर सिंह[2], पंकज मिश्रा[3] एवं नवनीत पारेख[2],

[1] **गोविन्द बल्लभ पन्त राष्ट्रीय हिमालयी पर्यावरण संस्थान, गढवाल क्षेत्रीय केन्द्र अपर भक्तियाना श्रीनगर गढवाल 246174, उत्त. राखण्ड, भारत फोन (01346) 252603,**

[2] **गोविन्द बल्लभ पन्त कृषि और प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय पन्तनगर, उधमसिंह नगर, उत्तराखण्ड 263145**

[3] **आई सी ए आर-विवेकानन्द पर्वतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, मालरोड़, अल्मोड़ा- 263601 उत्तराखण्ड**

फैसेयोलस वल्गैरिस (किडनी बीन या राजमा) दुनिया की सबसे महत्वपूर्ण फलीदार फसलों में से एक है। यह उष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों जैसे अफ्रीका, यूरोप एवं अमेरिका के कई भागों में एक महत्वपूर्ण दलहनी फसल के रूप में उगायी जाती है। भारत राजमा का सबसे बडा उत्पादक देश है। राजमा मध्य अमेरिका के लोगों का मुख्य भोजन है जिसका उत्पादन लगभग सात लाख हेक्टेयर क्षेत्रफल में किया जाता है और ब्राजील को छोड़कर साउथ अमेरिका में इसका उत्पादन छः लाख हेक्टेयर तक होता है। मैक्सिको को राजमा की उत्पत्ति और वितरण का केन्द्र माना जाता है। माना जाता है कि राजमा की खेती की शुरुआत लैटिन अमेरिका में लगभग सात हजार वर्ष पूर्व हुई थी। जहां से इसके दो मुख्य जीनपूल का उदय हुआ –मीसोअमेरिकन (मैक्सिको और कोलम्बिया) और एंडीयन (पेरु और अर्जेंटीना)। इन्हीं दो किस्मों की राजमा सम्पूर्ण विश्व भर में पायी जाती है। माना जाता है कि भारत में राजमा का वितरण पूर्तगालियों द्वारा किया गया था। दालें खाद्य प्रोटीन का महत्वपूर्ण स्रोत होती हैं जो कि भारतीय व्यंजनों का एक अनिवार्य हिस्सा है। भारत में राजमा की कई किस्में पायी जाती हैं जिसमें चित्रा राजमा, जम्मू राजमा और लाल राजमा मुख्य रुप से प्रसिद्ध हैं। राजमा भारत के उत्तर पश्चिमी हिमालयी राज्यों में उगायी जाने वाली प्रमुख फसलों में से एक है। जम्मू कश्मीर में इस फसल की भारी विविधता पायी जाती है। भारत दुनिया में दालों का सबसे बड़ा उत्पादक, उपभोक्ता तथा आयतक देश है। इसकी सालाना अनुमानित दालों की खपत की मात्र 26 मिट्रीक टन है। झारखण्ड, तमिलनाडु, कर्नाटक, उत्तरप्रदेश भी राजमा उत्पादन मे महत्वपूर्ण योगदान रहा है। राजमा उत्पादन में उत्तराखण्ड राज्य का 14 वां स्थान है।

राजमा प्रोटीन के लिए आवश्यक अमीनो अम्ल के स्रोत के रूप में बहुतायात से खाए जाने वाली फलीदार फसलों में से एक है। राजमा में कैल्सियम, कार्बोहाइड्रेट, फाइबर तथा प्रोटीन की अधिक मात्रा होती है तथा इसमें विटामिन बी की मात्रा भी पायी जाती है जो कि हमारे शरीर में कोलेस्ट्रोल को कम करने में मदद करता है और साथ ही मधुमेह, उच्च रक्तचाप और हृदय के लिए काफी लाभकारी है। राजमा में अन्य प्रकार के पोषक तत्व भी मौजूद होते है जो मनुष्य के स्वास्थ्य पर सकारात्मक प्रभाव डालते हैं। पदार्थ जैसे कि पॉलीफिनॉल, फ्लैवीनाइड्स, कैरोटीनाइड्स, सैपोनिन्स, टेनिन्स, लेक्टिन, ट्रिप्सिन अवरोधक, फाइटिक एसिड इत्यादि जो मुख्य रुप से प्रतिउपाचयक (Antioxidant Activity) प्रक्रियाओं और अन्य रोगों से बचाव करने में सक्षम हैं। मैदानी क्षेत्रों में राजमा को रबी की फसल में बोया जाता है जबकि पहाड़ी क्षेत्रों में यह खरीफ की फसल के रुप में उगाया जाता है। उत्तराखण्ड एक कृषि प्रधान राज्य है जिसका 86.7 प्रतिशत भू भाग पहाड़ी है। उत्तराखण्ड की 75 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या कृषि पर निर्भर है। जिनका योगदान राज्य के कुल घरेलू उत्पादन का 22.4 प्रतिशत है। यहॉ 69.45 प्रतिशत आबादी ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है जो कि कृषि, जड़ी–बूटी व वन सम्पदा पर निर्भर करती है। उत्तराखण्ड में कुल कृषि योग्य भूमि 13 प्रतिशत है। उत्तराखण्ड राज्य का ज्यादातर हिस्सा पहाड़ व वनों से आच्छादित हुआ है जिस कारण यहॉ का तापमान मैदानी राज्यों के मुकाबले कम ही रहता है और ज्यादातर इलाकों में ठण्ड रहती है यहॉ खाद्य फसलों के रूप में धान, गेहूँ, जौ, बाजरा, मंडुवा, झंगौरा आदि उगाया जाता है तथा दलहनी फसलों में राजमा, चना, भट्ट, तोर, गहत, मटर इत्यादि की खेती की जाती है। फलीदार राजमा की कई किस्में भारतीय हिमालयी क्षेत्र में अपने स्वाद और समृद्ध पौष्टिक मूल्यों के लिए उगाई जाती हैं। राज्य में उगने वाली राजमा को अपनी उच्च गुणवत्ता तथा उत्तम स्वाद के लिये जाना जाता है। उत्तरकाशी में स्थित हर्षिल, चमोली में जोशीमठ तथा पिथौरागढ में मुनस्यारी इत्यादि की राजमा का अपना

एक अलग ही स्वाद, महत्व एवं नाम है जो कि लोगों द्वारा अत्यधिक पसंद की जाती है। इन स्थानों पर उगने वाली राजमा गुणवत्ता के साथ–साथ खाने में स्वादिष्ट तथा पौष्टिक मानी जाती है। यह पोषकतत्वों की दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण होने के साथ–साथ अत्यधिक लाभकारी फसल भी है। इनके बीज तथा फली दोनों का भोजन के रुप में उपयोग किया जाता है। यदि हम इसे फली के रूप में प्रयोग करते हैं तो यह फ्रेंच बीन्स के रूप में जाना जाता है। इसकी बुआई व जुताई के लिए भूमि में जल की मात्रा कम होनी चाहिए तथा बलुई, दोमट, एवं चिकनी मिट्टी आदि राजमा की फसल के लिए उपयुक्त मानी जाती है। राजमा की फसल के लिए बुआई से एक या दो सप्ताह पहले गोबर की खाद खेतों में डाली जाती है जिससे खेतों की मिट्टी में नमी बनी रहे। राजमा की फसल के लिए 15°C से 25°C तापमान और 300 – 500 मिलीमीटर वर्षा उपयुक्त मानी जाती है। राजमा की दो प्रकार की फसल बौनी तथा बेल नुमा होती है। पहाड़ों में राजमा की खेती सीढीदार खेतों में की जाती है तथा इन खेतों में जुताई हल के माध्यम से की जाती है। सीढीदार खेतों की सिंचाई नलकूप, तालाबों अथवा हौज के माध्यम से की जाती है। उत्तराखण्ड में अलग–अलग रंगों की राजमा जैसे लाल, पीली, चितकवरी, भूरी आदि पायी जाती है। उत्तराखण्ड में राजमा की बुआई मई से जुलाई महीने में की जाती है और नवंबर तक फसल परिपक्व हो जाती है। राजमा की फसल के लिए दो पौधों के बीच की दूरी 10 से 15 सेमी० होनी चाहिए। राजमा में अन्य फसलों की भांति राइजोबीएम जीवाणु का सहजीवन कम मात्रा में पाया जाता है इसलिए इस फसल को पर्याप्त मात्रा में नाइट्रोजन (100 से 125 किलो प्रति हेक्टेयर) देने हेतु अतिरिक्त मात्र में उर्वरक का छिड़काव किया जाता है। परंतु इसके अतिरिक्त जैविक खाद का इस्तेमाल कर राजमा की पैदावार के साथ–साथ मृदा की उर्वरकता में भी वृद्धि की जा सकती है। राजमा की फसल की कटाई के लिए अनूकुल वातावरण वह होता है जब पत्तियाँ पीले व भूरे रंग में बदल जाती है और फली सूखकर परिपक्व हो जाती है। कटे हुये पौधों को चार से पॉच दिन तक धूप में रखकर सुखाया जाता है और फिर बीजों को फली से दराती अथवा लाठी के माध्यम से अलग करके निकाला जाता है। कृषि वैज्ञानिकों तथा कृषकों द्वारा राजमा के उत्पादन वृद्धि हेतु जैविक उर्वरकों पर शोध तथा इसका निर्माण कार्य किया जा रहा है। इस कड़ी में भारत सरकार के एन० एम० एच० एस० द्वारा वित्तपोषित परियोजना के अंतर्गत पर्यावरण संस्थान द्वारा जीवाणु निवेशित जैविक उर्वरक का प्रयोग राजमा के उत्पादन वृद्धि हेतु किया जा रहा है। जैव उर्वरक के उपयोग से उत्तराखण्ड के कई क्षेत्रों में राजमा के उत्पादन क्षमता में वृद्धि के साथ–साथ इसकी भौतिक एवं रासायनिक गुणों (कार्बोहाइड्रेट और प्रोटीन) की मात्रा में भी वृद्धि मापी गई है। वर्तमान समय में उत्तराखण्ड में स्थानीय लोगों को कोविड–19 महामारी से काफी नुकसान हुआ है जिस कारण यहॉ के अधिकतर लोग जो उत्तराखण्ड से पलायन कर चुके थे वे सभी कोविड–19 प्रकोप के बाद अब गावों की तरफ लौटने लगे हैं। यहॉ आय के स्रोत बहुत कम होने के कारण लोगों ने अपना ध्यान पुनः कृषि की ओर लगाना शुरु किया है। कृषि कार्यों को सफल एवं कार्यपूर्ण बनाने के लिए उत्तराखण्ड में सरकार तथा गैर सरकारी संस्थाओं द्वारा अत्यधिक जोर दिया जा रहा है ताकि लोगों को स्वरोजगार मुहैया कराया जा सके। गोविन्द बल्लभ पंत राष्ट्रीय हिमालय पर्यावरण संस्थान वन एवं पर्यावरण मंत्रालय (भारत सरकार) का एक स्वशासी संस्थान है जो कि हिमालय की पर्यावरण संबंधी समस्याओं पर गहन अध्ययन एवं शोध करता है। इसी क्रम में राष्ट्रीय हिमालयी अध्ययन मिशन (एन० एम० एच० एस०) के द्वारा संस्थान की गढ़वाल क्षेत्रीय इकाई, पंतनगर कृषि विश्वविद्यालय तथा विवेकानंद पर्वतीय कृषि अनुसंधान संस्थान की एक परियोजना राजमा कृषिकरण तथा उत्पादन बढाने हेतु स्वीकृत की गयी है। इसका प्रमुख उद्देश्य राजमा के अत्यधिक अनुकूलित कृषि स्थलों का चयन करना, उत्कृष्ट ठण्ड अनुकुलित जैव उर्वरक का भूमि प्रयोग तथा इनकी जॉच, उत्पादन मूल्यांकन तथा दस्तावेजीकरण करना है।

इस परियोजना के अंर्तगत वर्तमान में उत्तराखण्ड के 32 स्थलों से राजमा के एक्सेशन एकत्रित किए गए। सभी अध्ययन किए गए स्थलों से कुल 152 एक्सेशन दर्ज किए गए तथा इन एक्सेशन के पोषण और खाना पकाने की गुणवत्ता विशेषताओं का भी अध्ययन किया गया। AKJ/AR/KK/जखोल/26-04 से सूखे बीजों में अधिकतम वजन (0.2782±0.005 ग्राम) पाया गया जबकि AKJ/AR/DP/जुम्मा/01-04 से एकत्रित किए गए एक्सेशन में अधिकतम (16.18±0.26 मिमी) बीज की लंबाई दर्ज की गई। इसी तरह AKJ/AR/DP/हरकोट/12-01 से एकत्रि किए गए एक्सेशन में बीज की चौड़ाई अधिकतम (6.56±0.18मिमी)थीऔरAKJ/AR/DP/भल्लागॉव/05-01 से एकत्रित किए गए एक्सेशन में मोटाई अधिकतम (1.306±0.072 मिकी) दर्ज की गई, जबकि भिगोने के बाद बीज की लम्बाई और चौड़ाई में अधिकतम वृद्धि (21.18±0.07 और 10.60±0.20 मिमी) पायी गयी। (AKJ/RA/PD/तामक्लुंग/02-02) से प्राप्त किए गए एक्सेशन में पके हुए बीजों की मोटाई अधिकतम दर्ज की गयी। तामकलुंग से पके हुए बीजों में अधिकतम लंबाई चौड़ाई का अनुपात 2.003 और जलयोजन क्षमता 3.18 ग्राम प्रति बीज देखी गई। राजमा एक्सेसन की कुल कार्बोहाइड्रट मात्रा 16.68 से 41.43 प्रतिशत पायी गई। AKJ/AR/DP/तोलमा/04-01 के एक्सेशन में अधिकतम कार्बोहाइड्रट की मात्र पाई गयी जबकि

यह AKJ/AR/DP/फागती/03-02 एक्सेशन में न्यूनतम थी। हमारे प्रारंभिक प्रणामों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि अधिक ऊंचाई वाले राजमा एक्सेशन को कार्बोहाइड्रेट मात्रा में सामान्य रूप से समृद्ध माना जा सकता है तथा राजमा के बीजों को पकाने से पूर्व भिगोकर रखने से इनकी गुणवत्ता में काफी सुधार हो सकता है। हालांकि, अधिक स्पष्ट निष्कर्ष प्राप्त करने के लिए आगे के प्रयोगों की आवश्यकता है। यद्यपि, राजमा की फसल भारतीय हिमालयी क्षेत्रों में अपने स्वाद और समृद्ध पौष्टिक मूल्यों के लिए उगाई जाती है, लेकिन उत्पादकता कम होने के कारण प्रसिद्ध नहीं है। अतः कृषि वैज्ञानिकों के शोध, कृषकों द्वारा जैव उर्वरक युक्त कृषि तथा उन्नत तकनीक एवं बीजों के इस्तेमाल से राजमा की पैदावार में वृद्धि की जा सकती है।

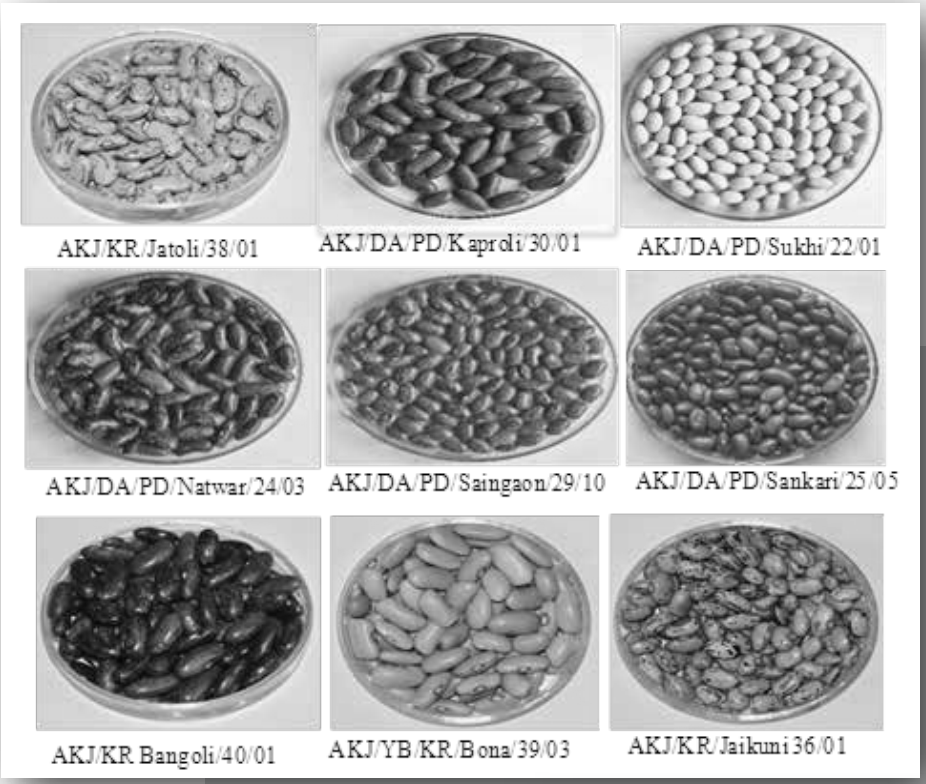

चित्र 1– उत्तराखण्ड के विभिन्न स्थानों से एकत्रित किए गए राजमा के एक्सेशन

चित्र 2– उत्तराखण्ड के उॅचाई क्षेत्र में उगने वाले राजमा के बेलनुमा पौधे

भारतीय हिमालयी राज्य उत्तराखण्ड में वर्षा की उर्ध्व संरचना का अध्ययन

राजेंद्र सिंह रावत, विनोद कनवाल, पुष्कर सिंह बिष्ट, वैभव गोसावि एवं संदीपन मुखर्जी,

गोविंद बल्लभ पंत राष्ट्रीय हिमालयी पर्यावरण संस्थान, कोसी-कटारमल, अल्मोड़ा, उत्तराखण्ड

भारतीय हिमालय को मोटे तौर पर तीन क्षेत्रों में विभाजित किया गया हैः पश्चिमी, मध्य और पूर्वी। भारतीय हिमालयी क्षेत्र में व्यापक जैव विविधता और जल निकाय हैं, जो जनसांख्यिकी और बहुमुखी आर्थिक, पर्यावरणीय, सामाजिक और राजनीतिक प्रणाली में इस भू–भाग की समृद्धि का कारण है। यह क्षेत्र इस भू–भाग में अधिकांस झरनों, धाराओं, और जलधारा–पोषित नदियों का पुनरुदभूत करता हैं। यह भी निर्बाद सत्य है कि भारतीय हिमालयी क्षेत्र प्राकृतिक दृष्टि से अत्यंत संवेदनशील हैं। बीते कुछ दशकों से यहां बादल फटने, भूस्खलन, त्वरित जल प्रलय, बाढ़, वर्षा और अन्य चरम एवं अप्रत्याक्षित मौसमी घटनाओं से हुई मानवजनित और प्राकृतिक घटनाओं ने पूरे विश्व का ध्यान इसकी ओर बढ़ाया है।

इस भू–भाग में दो प्रकार के मेघ वर्षण पद्धतियां देखी गई है। प्रथम शीतकाल में चलने वाली तीव्र हवाओं और तूफानों के कारण मध्यम मात्र का वर्षण और दूसरा दक्षिण–पश्चिमी मानसूनी हवाओं के कारण गर्मियों की भारी वर्षा। शीतकाल में भारी हिमपात पश्चिम से हिमालय की ओर बढ़ने पर कम दबाव वाली मौसम प्रणालियों के कारण होता है। इस क्षेत्र में मौसम संबंधी स्थितियाँ मई के अंत में प्रतिगामी हो जाती है । मानसून अवधि के दौरान उत्तर–पश्चिमी और मध्य भारतीय हिमालय में क्रमशः 274.2 और 704.1 m.m., लंबी अवधि की औसत वर्षा जबकि सर्दियों में मध्य भारतीय हिमालय में वर्षा ज्यादातर पश्चिमी विक्षोभ के कारण लगभग 176.0 m.m. होती है। स्पष्ट है, की हिमालयी पारिस्थितिकी तंत्र को प्रभावित करने वाले घटकों में वर्षा भी एक प्रमुख घटक है।

परंपरागत अध्ययनों में वर्षा को स्तरीय मेघ वर्षण, संवहनी अथवा दोनों के मिश्रण के रूप में वर्गीकृत किया जाता है जो कि वर्षा के सूक्ष्म भौतिक गुणों की भिन्नता की मात्रा के आधार पर होता है। स्तरीय मेघ वर्षण वर्षा की पहचान तब की जाती है जब वायुमंडलीय सीमा परत के इकाई आयतन में हवा का औसत उर्ध्वाधर वेग, बर्फ के अंतिम पतन वेग की तुलना में छोटा हो यदि नहीं तो वर्षा को संवहनी के रूप में वर्गीकृत किया जाता है (चित्र–1 के अनुसार)। मिश्रित संवहनी–स्तरीय मेघ वर्षण अवक्षेपण आम तौर पर अंतर्निहित संवहन के साथ पिघलने वाली परत को चिन्हित कर इसकी पहचान की जाती है। संवहनी वर्षा की पहचान रडार ध्वनि परावर्तन पद्धति द्वारा भी की जाती है। पर्वतीय क्षेत्र में मेघ की सूक्ष्म–भौतिक प्रतिक्रियाएं महत्वपूर्ण हैं जो वायु के झोंकों में बाध्य होकर बयार की दिशा में अपोप्रवाह और दबाव से अधोप्रवाह युक्त वर्षा होती है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि संवहन अवक्षेपण तब होता है जब वायु संवहन अस्थायी रूप से आत्मनिर्भर तंत्र के माध्यम से लंबवत रूप से ऊपर उठती है। सामान्य वर्षा तब होती है जब बड़े वायु द्रव्यमान तिरछे रूप से बढ़ते हैं क्योंकि बड़े पैमाने पर हवाएं और वायुमंडलीय गतिशीलता उन्हें एक–दूसरे के ऊपर जाने के लिए बाध्य करती हैं।

नतीजतन, वर्षा की अवधि, तीव्रता और वितरण भिन्न होता है और तापीय अस्थिरता प्रेरित संवहनी वर्षा भारी बारिश और सामान्य वर्षा छोटी अवधि के परिणाम हो सकते हैं । रडार–आधारित उपकरणों का उपयोग अक्सर वर्षा के प्रकार और आर्द्रतामापी के गुणों की पहचान के लिए किया जाता है। वर्षा के प्रकार की पहचान रडार परावर्तन प्रोफाईल में लाईट बैंड के संकेत के आधार पर की जाती है। पानी की बूंदों की तुलना में उच्च परावर्तकता वाली पिघलने वाली परत के कारण बढ़ी हुई पष्वविखराव के माध्यम से उज्ज्वल बैंड का उत्पादन किया जाता है। एक लंबवत प्वाइंट ग्राउंड–आध ाारित का–बैंड (उच्च आवृत्ति) सूक्ष्मवर्षा रडार आधारित अध्ययन आमतौर पर उर्ध्वाधर संरचना का आकलन करने के लिए किया जाता है। इसके द्वारा वर्षा वर्गीकरण और वर्षा संबंधित अन्य मानकों जैसे राडार परावर्तन (reflectivity), तरल जल अन्तर्विष्ट (LWC), वर्षा दर (Rain Rate) और बूंदों के गिरने की गिरावट की गति (fall velocity), आदि सम्मिलित हैं। स्तरीय मेघ वर्षण का विश्लेक्षण एमआरआर (माइक्रो रेन रडार) आधारित रडार से किया जाता है। इसमें लाईट बैंड की उपस्थिति रडार रिफेक्टिविटी प्रोफाइल का अध्ययन कर द्रवण स्तर की पहचान की जाती है। मेल्टिंग परत के ब्राइट बैंड सिग्नेचर में पानी की बूंदों की तुलना में

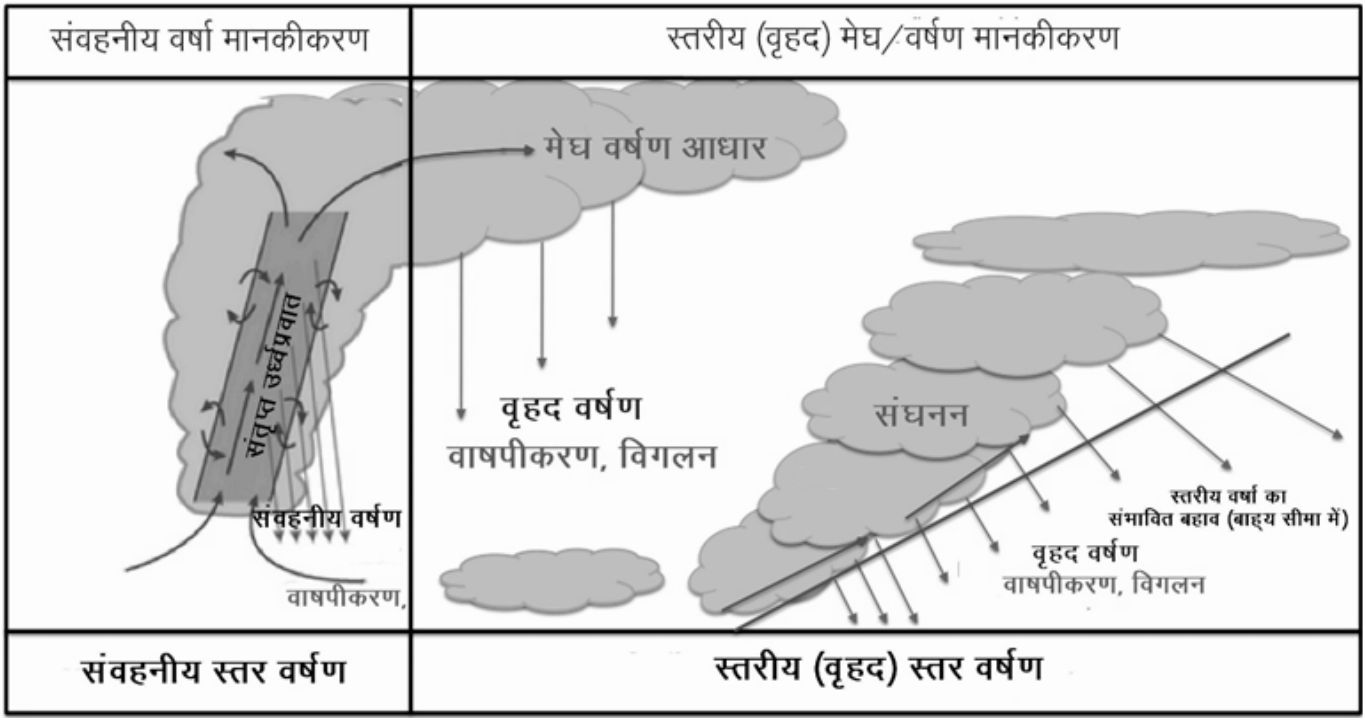

चित्र–1: संवहनीय और स्तरीय मेघ वर्शण प्रक्रिया को परिलक्षित करता आलेख

उच्च रडार प्रतिक्रियात्मकता होती है और उर्ध्ववाह अग्रणी वर्षा की गैर–मौजूदगी की पुष्टि स्तरीय मेघ वर्षा को करने के लिए की जा सकती है।

वर्षा की उर्ध्वाधर संरचनाओं का अध्ययन विश्व स्तर पर उष्णकटिबंधीय क्षेत्र में तथा भारत में मध्य और प्रायद्वीपीय क्षेत्र में कई शोधकर्ताओं द्वारा अध्ययन किया गया है । वर्षा के आंतरिक गुणों में महत्वपूर्ण भिन्नताओं को सामान्य और संवहनी वर्षा दोनों के लिए ऋतुओं की परवाह किए बिना सूचित किया गया है। भारतीय हिमालयी क्षेत्र में वर्षा की उर्ध्वाधर संरचनाएं का अध्ययन अब तक अस्पष्ट रहा है। लेकिन गोविंद बल्लभ पंत राष्ट्रीय हिमालयी पर्यावरण संस्थान द्वारा पिछले कुछ सालों से निरंतर अनुसंधान किया किया जा रहा है । पिछले कुछ सालो के सभी मौसम की वर्षा उर्ध्वाधर संरचना को गोविंद बल्लभ पंत राष्ट्रीय हिमालयी पर्यावरण संस्थान के मौसम स्टेशन, कोसी–कटारमल, अल्मोड़ा, उत्तराखंड में मापा गया, जिसकी समुद्र तल से ऊंचाई 1217m है। यह साइट कोपेन–गीजर जलवायु वर्गीकरण के अनुसार जलवायु श्रेणी पार तरंगिका विष्लेशण के अंतर्गत आती है। यह स्थल मध्य भारतीय हिमालय के कोसी–नदी वाटरशेड के भीतर स्थित है। लगभग 62: साइट पर कुल वार्षिक वर्षा मानसून के मौसम (740 m.m.) के दौरान होती है, और साइट प्रत्येक मानसून के मौसम में औसतन 2.48 दिनों का अनुभव करती है, जिसमें दैनिक बारिश 35.5m.m. से अधिक होती है। साइट पर सर्दियों की वर्षा पश्चिमी विक्षोभ से जुड़ी है, जिसके परिणामस्वरूप औसतन 5–10 गीले दिनों (दैनिक वर्षा 5.0m.m.) के साथ 72m.m. की औसत वर्षा होती है।

गोविंद बल्लभ पंत राष्ट्रीय हिमालयी पर्यावरण संस्थान के अनुसंधान कार्य में यह पाया गया है कि शीतकाल में बादल 2000–4800m के बीच होता है जो की पिघलने वाली परत की वजह से है । परावर्तन प्रोफाईल में लाईट बैंड का स्थान लगभग 2800m वर्षण पर मानक परावर्तन प्रोफाइल 16.15 (dbz) था जिसमें 1.22 dbz कई की मानक त्रुटि पाई गई। इस अध्ययन की औसत पिघलने वाली परत की ऊंचाई अहमदाबाद, और पश्चिमी घाट, भारत में सामान्य वर्षा पिघलने की परत की ऊंचाई से कम (लगभग 5000 और 4600m) थी। जिसमें LWC और Rain Rate की अधिकता सतह से लगभग 3000 m पर दर्ज की गई थी, जिसकी दर 0.86 gm^{-3} LWC और 3.98 mmh^{-1} Rain Rate थी। सबसे कम न्यून वर्षण वेग (1.6 ms^{-1}) भूमि से 2000–4000 m ऊंचाई के बीच देखा गया जहां ब्राइट बैण्ड की पहचान सर्वाधिक थी। इस अध्ययन में मानसूनी काल में स्तरीय मेघ वर्षण की पहचान लाईट बैंड से और अत्यधिक वर्षण जो कि शीतकाल थी की घटनाओं के साथ तुलना की गई है। लाईट बैंड की उपस्थिति हमेशा जमीन के ऊपर एक ही ऊंचाई पर सुसंगत नहीं थी, हालांकि,

सबसे मजबूत पिघलने वाली परत की पहचान भूमि सतह से 1000–3600 m के बीच अत्यधिक सर्दियों की वर्षा के लिए और भूमि सतह से 400–3200 m के बीच मानसून–वर्षा के लिए दर्ज की गई। अत्यधिक सर्दियों की वर्षा के लिए LWC और Rain Rate की अधिकतम मात्र क्रमशः लगभग 3600 और 3400 m में भू–सतह से ऊपर दर्ज की गई थी, जिसमें 0.33 gm^{-3} LWC और 2.21 उउी$^{-1}$ Rain Rate दर्ज हुआ। मानसून के दौरान LWC और Rain Rate की अधिकतम मात्र क्रमशः 4000 और 3400 मीटर के आसपास दर्ज की गई, जिसकी दर 0.381 gm^{-3} LWC जमीन के ऊपर और 5.54 mmh^{-1} Rain Rate थी, जो कि यह दर्शाता है कि मानसून की बारिश की दर (तरल पानी की मात्र) सर्दियों के मौसम की तुलना में अधिक(कम) है।

इस अध्ययन से हम इस निष्कर्ष पर पहुंच सकते हैं की बारिश की बूंदों की सांद्रता और बूंद व्यास के उर्ध्वाधर वर्षा सूक्ष्म संरचनाएं जटिल भू–आकृति में बारिश के सटीक अनुमान के लिए महत्वपूर्ण हैं। जटिल हिमालयी भू–भाग के लिए इस परियोजना में रिपोर्ट की गई वर्षा की उर्ध्वाधर संरचनाओं का विश्लेशण अद्वितीय और अपनी तरह की पहला अध्ययन है जिससे कुछ महत्वपूर्ण आयाम सामने आए हैं, जो मौसम आधारित रडार का उपयोग कर वर्षा का अनुमान लगाने के लिए आवश्यक हैं, और मेघ के सूक्ष्म भौतिक मापदण्डों को समझने में सहायक हैं। इसके अलावा, इस परियोजना में प्रस्तुत ऑकड़े वर्षा क्षीणन मॉडल या आईटीयू–आर मॉडल का उपयोग कर हिमालय के पर्वतीय इलाकों में सिग्नल क्षीणन विशेषताओं को समझने हेतु उपयोगी है।

इसके अलावा, इन–सीटू अवलोकन से वर्षा की उर्ध्वाधर संरचना का उपयोग कर संख्यात्मक सिमुलेशन मॉडल को सुधारा जा सकता है। इस अध्ययन में प्रस्तुत परिणामों को सर्दियों के दौरान मध्य और उत्तर–पश्चिमी हिमालय पर क्लाउड सीडिंग गतिविधियों के लिए प्रभावी ढंग से उपयोग किया जा सकता है। हिमालय पर वर्षा की बेहतर भविष्यवाणी और प्रेरित भूस्खलन जोखिम क्षेत्र मानचित्रण के लिए जांच की गई अत्यधिक वर्षा का अध्ययन नीति–निर्माताओं और इस क्षेत्र में अनुसंधानकर्ताओं हेतु लाभप्रद हो सकता है।

आभार – लेखक गोविंद बल्लभ पंत राष्ट्रीय हिमालयी पर्यावरण संस्थान के निदेशक का संस्थान में सुविधाएं प्रदान करने के लिए हृदय से आभारी हैं।

हिमालयी समुदायों द्वारा अपनाई गई जलवायु अनुरूप प्रतिस्कंदी प्रथाएं

कपिल केसरवानी', आरुषि शर्मा, तपनघोष, अंजलि तिवारी,

गोविंद बल्लभ पंत राष्ट्रीय हिमालयी पर्यावरण संस्थान, कोसी-कटारमल, अल्मोड़ा- 263643, उत्तराखंड

भारत दुनिया की सबसे तेजी से बढ़ती अर्थव्यवस्थाओं में से एक है और 120 करोड़ से अधिक लोगों (दुनिया की आबादी का लगभग 17:) का घर है। चूंकि भारत में जनसंख्या तेजी से बढ़ रही है, इसलिए आने वाले दिनों में इसकी ऊर्जा की मांग भी बढ़ेगी। भारत में ऊर्जा की खपत और बिजली उत्पादन अभी भी काफी हद तक जीवाश्म ईंधन पर निर्भर हैं। भारत की प्राथमिक ऊर्जा खपत में कोयले की हिस्सेदारी मुख्य रूप से 42 प्रतिशत। तेल की 23 प्रतिशत प्रा तिक गैस की 6 प्रतिशत और नवीकरण ऊर्जा (जल विद्युत, पवन और सौर ऊर्जा) की हिस्सेदारी 31 प्रतिशत है। पूरे भारत में कुल बिजली उत्पादन में परमाणु ऊर्जा का हिस्सा वर्ष 2014 से लगभग 3–3.5 प्रतिशत तक रहा है। वहीं बिजली का वास्तविक बणिज्यिक उत्पादन वर्ष 2014 में 34,162 मिलियन यूनिट से बढ़कर वर्ष 2021 में 43,918 मिलियन यूनिट हुयी है। भारत में विद्युत उत्पादन के मुख्य स्रोत है जैसे कि कोयला, गैस, तेल, जल, विद्युत ऊर्जा और परमाणु ऊर्जा है। ग्रामीण क्षेत्रें में अभी भी खाना पकाने के लिए लोग लकड़ी का ही उपयोग करते है। दूरस्थ क्षेत्र अभी भी ऊर्जा कुशल नहीं हैं और उन्हें जलवायु परिवर्तन से निपटने के लिए तत्काल जलवायु अनुकूल आचरण की आवश्यकता है। यह अनुमान लगाया गया है कि प्रति वर्ष प्रत्येक घर में लगभग 1,000 किलोग्राम ईंधन की लकड़ी की खपत होती है। पर्यावरण और वन मंत्रलय की 2011 की राज्यवार ईंधन की लकड़ी की खपत की रिपोर्ट के आंकड़ों के अनुसार, हिमालयी राज्य में प्रति वर्ष लकड़ी की खपत इस प्रकार है– जम्मू और कश्मीर 13.94 लाख टन; हिमाचल प्रदेश 12.14 लाख टन; उत्तराखंड 25.66 लाख टन, और असम 114.21 लाख टन। ग्रामीण क्षेत्रें में आम तौर पर महिलाएं और बच्चे ही ईंधन की लकड़ी इकट्ठा करते हैं, पर ज्यादातर महिलाएं ही ईंधन की लकड़ी की प्रमुख संग्रहकर्ता और प्रदाता हैं, और इस कार्य के लिए उन्हें बहुत सारी कठिनाइयों का सामना भी करना पड़ता है। वनों के तेजी से कटने के कारण महिलाओं को ईंधन की लकड़ी के लिए दूर तक चलकर जाना पड़ता है। ग्रामीण और दूरस्थ क्षेत्रें में गरीबों को रियायती दर पर ईंधन और प्रौद्योगिकी मुहैया कराना सरकार के लिए अभी भी एक चुनौती है। हिमाचल जैसे पहाड़ी इलाके वाले प्रदेश में ही लगभग 90 प्रतिशत आबादी ग्रामीण क्षेत्रें में रहती है। यहाँ ईंधन की लकड़ी अभी भी ऊर्जा का प्राथमिक स्रोत है जिसका उपयोग खाना पकाने और पानी गर्म करने के लिए किया जाता है। इस ईंधन के स्रोत को एकत्र करने में ही महिलाओं का अधिकतम समय खर्च हो जाता है। महिलाओं को सशक्त बनाने के लिए ग्रामीण क्षेत्रें में कुछ ऊर्जा कुशल विकल्पों को अपनाने की जरूरत है। हिमाचल प्रदेश और लेह में ऐसे ही कुछ वैकल्पिक आचरण को अपनाया गया है जो बदलते पर्यावरण के अनुकूल है।

हिमाचल प्रदेश में अपनाए गई जलवायु अनुरूप प्रथाएं

हिमाचल प्रदेश भारत देश के उत्तरी भूभाग में स्थित एक ठंडा प्रदेश है। यहाँ का मौसम अधिकतर ठंडा ही रहता है ऐसे में खाना बनाने या पानी गर्म करने के लकड़ी एकत्रि करने के लिए महिलाओं को दूर–दूर तक जाना पड़ता है। ऐसे हालातों में महिलाओं को सशक्त बनाने के लिए सबसे पहले ये सुनिश्चित करना जरूरी है की उनके पास अपने बारे में सोचने के लिए समय हो। आमतौर पर महिलाओं का अधिकतम समय परिवार की जरूरतों को पूरा करने में ही निकल जाता है। 'जागृति' नामक एक समुदाय आधारित संगठन (गैर सरकारी संस्था), पहाड़ी क्षेत्रें में महिलाओं को सशक्त बनाने के लिए प्रयास कर रही है। यह संगठन ग्रामीण क्षेत्रें में महिला सशक्तिकरण के लिए काम करता है। इस संगठन का मुख्य उद्देश्य महिलाओं को आजीविका विकास का मौका देकर उन्हें सशक्त बनाना है। महिलाओं को आजीविका के बारे में सोचने एवं तैयार करने के लिए उनके दैनिक कार्यों से समय निकालना सबसे बड़ी बाधा थी। इसलिए संगठन ने हिमालयी क्षेत्रें में ऊर्जा–कुशल और समय–कुशल उपकरणों के उपयोग को बढ़ावा देने का प्रयास किया। जलवायु परिवर्तन के अनुकूल होने के लिए इन दिनों ऊर्जा कुशल उपकरणों का उपयोग दैनिक जीवन में अति आवश्यक है। इसलिए जागृति ने एक परियोजना शुरू करने का फैसला किया जिसमें हिमाचल राज्य के कुल्लू जिले में हमाम (पारंपरिक वॉटर हीटर), प्रेशर कुकर और तरलीकृत पेट्रोलियम गैस स्टोव का प्रसार शामिल था। इस कार्यक्रम

को महिला समूह की मदद से लागू किया गया। संस्था ने महिलाओं की बचत और ऋण समूहों को गांव स्तर पर बनाया ताकि वे इन उपकरणों का खरीदने का खर्च वहन कर सकें। जागृति संगठन 1200 से अधिक गरीब ग्रामीण महिलाओं की मदद के लिए काम कर रहा है, जिन्हें 100 महिला बचत और ऋण समूहों में बांटा गया है। 2001 में, जागृति ने हिमाचल प्रदेश के कुल्लू जिले की लाग घाटी में गरीब महिलाओं को सशक्त बनाने का काम शुरू किया। पहाड़ी राज्य होने के कारण हिमाचल प्रदेश में तापमान अधिकतर ठंडा ही रहता है। इसलिए साल भर दैनिक कार्यों के लिए गर्म पानी की जरूरत होती है। सर्दियों के छह महीनों के दौरान एक औसत परिवार को प्रतिदिन लगभग 50.60 लीटर गर्म पानी की आवश्यकता होती है। अध्ययन के दौरान, यह पाया गया है कि पारंपरिक चूल्हे में 20 लीटर पानी गर्म करने के लिए 10.12 किलोग्राम लकड़ी की आवश्यकता होती है, जबकि हमाम को केवल 02 किलोग्राम घरेलू अपशिष्ट, फसल अवशेष या टहनियों की आवश्यकता होती है।

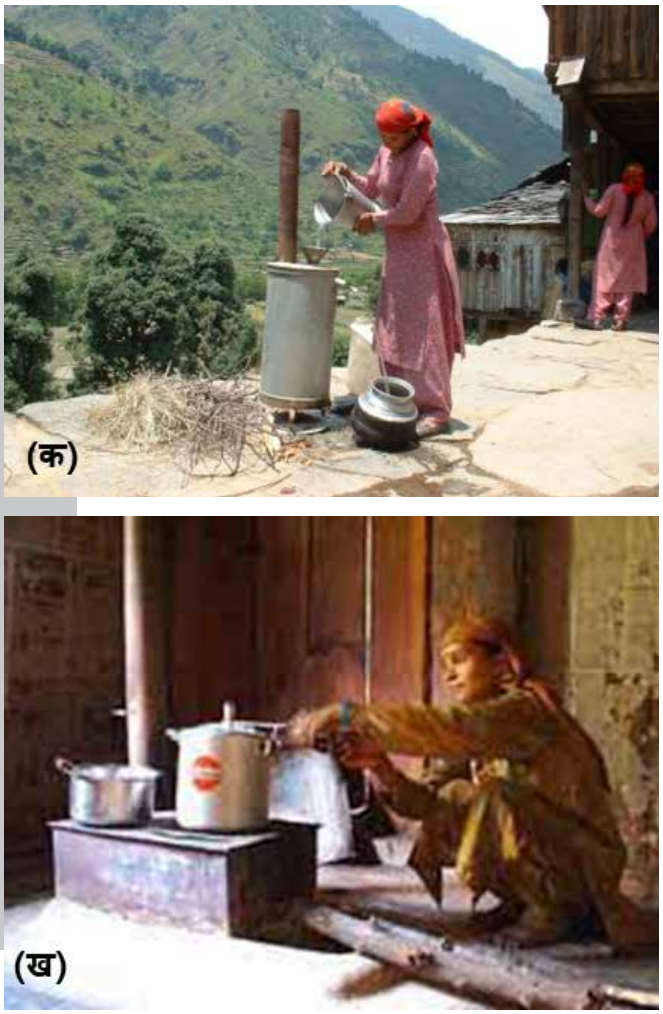

चित्र 1: (क) हमाम और (ख) प्रेशर कुकर का उपयोग करती महिलाएं (स्रोतः यूएनडीपी–महिला शक्तिः भारत में ग्रामीण महिलाओं के लिए ऊर्जा सेवाएं)

हमाम एक साधारण टिन संरचना से बना एक पानी गर्म करने का उपकरण है (चित्र 1क)। इस उपकरण को तैयार करने के लिए एक बेलनाकार खोल के आकार का ढांचा (सिलैंड्रिकल शेल) बनाया जाता है जिसमें भीतरी बेलन ऊपर से खुला होता है और उसके निचले हिस्से में जाली का प्रयोग किया जाता है, जिससे जली हुई राख बाहर निकल सके। भीतरी सिलेंडर में कुछ टहनियाँ या छोटी लकड़ियो का उपयोग जलाने के लिए किया जाता है, और इसे ढक दिया जाता है। पानी ऊपर की ओर जुड़े फनल के आकार के प्रवेश द्वार (इनलेट) की मदद से भरा जाता है जो बाहरी और आंतरिक सिलेंडर के बीच की जगह में पानी भरता है। पानी जब गर्म हो जाता है तो यह इनलेट पाइप की तुलना में कम ऊंचाई पर जुड़े निकास द्व ार (आउटलेट पाइप) से बाहर आता है। जब इनलेट पाइप में ठंडा पानी डाला जाता है, तो आउटलेट पाइप से गर्म पानी बाहर निकलता है। यह उपकरण बेहतर ईंधन–उपयोग दक्षता प्रदान करता है, जिसका अर्थ है कि जंगल में ईंधन की लकड़ी संग्रहण के लिए की जाने वाली यात्रएं, जो पहले रोजाना की जाती थीं, प्रति सप्ताह एक से चार यात्रओं तक ही सीमित हो जाती हैं। एलपीजी स्टोव और प्रेशर कुकर जैसे समय और ऊर्जा–कुशल उपकरणों के उपयोग से अब महिलाओं के पास प्रतिदिन 1.1.5 घंटे का समय बच जाता है (चित्र 1ख)। महिलायें इस खाली समय का उपयोग प्रशिक्षण कार्यक्रमों में भाग लेने एवं अतिरिक्त आय उत्पन्न करने के लिए करने लगी है। इन कार्यक्रमों की मदद से अब तक 1,000 से ज्यादा परिवार लाभान्वित हो चुके हैं। जागृति संगठन द्वारा शुरू की गयी यह अभूतपूर्व पहल हिमाचल प्रदेश में महिला सशक्तिकरण और सामाजिक परिवर्तन का मंच बन गया है।

सोलर वॉटर हीटर –हमाम

हिमालयन रिसर्च ग्रुप के संस्थापक डॉ. लाल सिंह ने सोलर हमाम का आविष्कार किया है, जो –20 डिग्री सेल्सियस से कम तापमान पर भी दूर–दराज के हिमाचल प्रदेश में रहने वाले हजारों परिवारों को गर्म पानी मुहैया कराता है। मैगल के ग्रामीण स्वतंत्र रूप से गर्म पानी का उपयोग करने में सक्षम हैं, जिससे उनकी ईंधन आवश्यकताओं में 40 प्रतिशत की कमी आई है। डिवाइस एक लकड़ी का फ्रेम है जिसमें स्टायरोफोम के साथ जस्ती लोहे से बनी एक अवशोषक शीट शामिल है। एक अनुकूलित एल्यूमीनियम मिश्र धातु पानी का तार (18 लीटर क्षमता) सूर्य के सामने की तरफ रखा गया है। अवशोषक शीट और पानी का तार काले रंग के साथ लेपित होते हैं। पेंट को लगाने से पहले एक अनूठी सामग्री के साथ मिश्रित किया जाता है। यह सौर ऊर्जा को अवशोषित करने की क्षमता को बढ़ाता है। एक 3.5 मिमी खिड़की का शीशा सूरज की ओर मुख करके रखा गया है। डिवाइस को चलाने के लिए पाइप के ऊपरी बाएं सिरे से पानी डालने की आवश्यकता होती है।

और लगभग 15 मिनट बाद, निकास द्वार के नीचे दाहिनी ओर से लगभग 80 डिग्री सेल्सियस का गर्म पानी छोड़ा जाता है। सूर्य द्वारा गर्म किए गए अल य पाइप से गुजरने पर पानी गर्म हो जाता है।

शोध से पता चला कि 60 प्रतिशत से अधिक जलाऊ लकड़ी का उपयोग पानी गर्म करने और अंतरिक्ष को गर्म करने के लिए किया जाता था, जबकि लगभग 30–40 प्रतिशत खाना पकाने के लिए उपयोग किया जाता था। गांव के निवासी खाना गर्म करने या चाय बनाने के अलावा एलपीजी का इस्तेमाल नहीं करते थे। वे पूरी तरह से चिमनी पर निर्भर थे। 2005 में, एचआरजी टीम ने ग्रामीणों को सौर हमाम पेश किया। यह मिनटों में पानी गर्म कर सकता है, और दिन भर काम करता है। दक्षता में सुधार करने के लिए इसने कुछ वर्षों में पुनरावृत्ति की है, जिससे यह –20 डिग्री सेल्सियस पर भी काम कर सके। पहले बैच को गर्म होने में लगभग 45 मिनट लगते हैं क्योंकि पाइप सूरज की किरणों को सोख लेते हैं, लेकिन अगला बैच 15–20 मिनट में निकल जाता है। ग्रामीणों को यह सुनिश्चित करना होगा कि पाइपों को जमने और फटने से बचाने के लिए दिन के अंत तक पाइपों में कोई पानी न रहे। इस प्रणाली में रात्रिजल निकासी का प्रावधान सन्निहित है। उपयोग की जाने वाली सभी सामग्री खाद्य ग्रेड है, और गर्म पानी का उपयोग खाना पकाने, धोने, नहाने और अन्य कार्यों के लिए समान रूप से किया जा सकता है। ग्रामीणों से उनके योगदान के लिए लकड़ी का फ्रेम देने का अनुरोध किया गया। वॉटर हीटर की कीमत लगभग 12000 रुपये है, लेकिन केंद्र और राज्य सरकारें उन्हें अपनी विभिन्न योजनाओं के तहत फंड देती हैं। ग्रामीणों को मुफ्त में वॉटर हीटर मुहैया कराया जाता है। अब तक, 60 गांवों के लगभग 6000 लोग हमाम से लाभान्वित हो चुके हैं। इसके अतिरिक्त, 30 प्रशिक्षित कारीगर सोलर वॉटर हीटर का निर्माण करते हैं। इस कदम से स्थानीय लोगों के लिए रोजगार पैदा करने में भी मदद मिली है। शोध का दावा है कि वॉटर हीटर 40 प्रतिशत ईंधन की लकड़ी को बचाने में मदद करते हैं, जो कि 2.5 मीट्रिक टन के वार्षिक उत्सर्जन के बराबर है। गांवों के पास जंगलों में जैव विविधता तत्वों को बनाए रखने और संरक्षित करने के लिए लकड़ी की खपत को कम करना महत्वपूर्ण है।

लद्दाख में अपनाए गई जलवायु अनुकूल प्रथा

रसेल कॉलिन्स नामक एक आस्ट्रेलियाई मूल के इंजीनियर ने हिमालयी समुदायों की मदद करने के लिए तीन साल की कड़ी मेहनत और कई असफल प्रयासों के बाद रॉकेट स्टोव का एक प्रोटोटाइप बनाया। प्रोटोटाइप पर कड़ी मेहनत करने के बाद, 2017 में लद्दाख पारिस्थितिक विकास समूह, लेह में उन्होंने उत्पादन शुरू किया। मूल हिमालयन रॉकेट स्टोव की कीमत 10,000 से 15,000 रुपये के बीच है (चित्र 2क)। जिन क्षेत्रें में लोगों की पहुंच ईंधन तक नहीं है, वे दहन के लिए इस स्टोव में छोटी लकड़ियों या जानवरों के गोबर से तैयार उपलो का उपयोग कर सकते हैं। कई क्षेत्रें में ये सामग्री आसानी से उपलब्ध हो जाती है और इस प्रकार लकड़ी का उपयोग भी कम हो जाता है जिससे की परिपक्व पेड़ों की कटाई की आवश्यकता भी नहीं पड़ती। हिमालयन रॉकेट स्टोव एक छोटे, पुल–आउट ट्रे के साथ एक बड़े धातु के बक्से की तरह दिखता है। पहाड़ी क्षेत्र में रहने वाले लोग इसे पारंपरिक बुखारी के समान समझ सकते हैं जिसे वे सर्दियों में अपने घरों में उपयोग करते हैं। हिमालयन रॉकेट स्टोव उनके पारंपरिक चूल्हे के समान ही है लेकिन अधिक ईंधन–कुशल है। इसे एक साथ स्टोव और रूम हीटर के रूप में उपयोग किया जा सकता है। जब बाहर का तापमान .10 डिग्री सेल्सियस से भी कम होता है, तो हिमालयन रॉकेट स्टोव घरो के अंदर 25 डिग्री सेल्सियस तक का तापमान बनाए रखने में सक्षम है। चूंकि 10,000 रुपए की कीमत का स्टोव लेना हिमालय में रहने वाले ग्रामीण समुदायों की पहुंच से बाहर है, यह सोचकर रसेल ने इस चूल्हे को ऐसी सामग्री से बनाने का प्रयोग किया जो आसानी से उपलब्ध हो और सस्ती भी हो (चित्र 2ख)।

चित्र 2: (क) धातु से बना हुआ मूल हिमालयन र केट स्टोव (ख) रसेल कोलिन्स धुएँ रहित पारंपरिक सामाग्री से बने हुए स्टोव को प्रदर्शित करते हुए (स्रोतः Himalayanrocketstove.com)।

अपने सामान्य चूल्हे में वह एक धातु के डिब्बे का उपयोग करते है, लेकिन अगर धातु के बक्से का उपयोग करने के बजाय कुछ प्राथमिक सामग्री जैसे पुआल (मिट्टी के गोले की संरचना को ताकत देने के लिए) और मुरमुरे का उपयोग किया जाता है, तो यह अधिक किफायती बन जाता है। इस किफायती संस्करण में मिट्टी, पुआल और मुरमुरे जैसी बुनियादी सामग्रियों का उपयोग किया जाता है। सभी सामग्रियों को मिलाकर एक मिश्रण तैयार किया जाता है। इस मिश्रण से मिट्टी के गोले तैयार किए जाते हैं। मिट्टी के गोले तैयार करने के लिए, एक टिन संरचना का साँचे के रूप में उपयोग किया जाता है। 3 मिट्टी के गोले एक.दूसरे के ऊपर रखे जाते हैं और एक मिट्टी के गोले को आधा काटा जाता है, इस मिट्टी के गोले को एक विशेष तरीके से काटा जाता है ताकि इसके अंदर आग को घुमाया जा सके। इस स्टोव की तकनीक ऐसी है जो की घरेलू वायु प्रदूषण की समस्या से निपटने में काफी हद तक सक्षम है, जिससे विश्व स्तर पर लगभग 4 मिलियन और भारत में 1 मिलियन लोगों की सालाना मृत्यु हो जाती है। इस स्टोव में उपयोग की जाने वाली सामग्रियों का भी अपना महत्व होता है . (प) मिट्टी गर्मी को सोख लेती है और (पप) मुरमुरों से खाली जगह बनती हैं। इस तरीके से आग से उत्पन्न धुएं को भी पुनः जलाया जाता है। धुएँ को पूर्ण रूप से जलाना ही सभी धुंआ रहित चूल्हों के पीछे का विज्ञान है। लद्दाख में 70 प्रतिशत लोग खाना बनाने के लिए एलपीजी का उपयोग करते हैं परन्तु 30 प्रतिशत लोग आज भी लकड़ी और गोबर का उपयोग करते हैं। चूंकि एलपीजी की कीमत दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है, इसीलिए अगर लकड़ी और गोबर जैसी स्थानीय रूप से उपलब्ध सामग्री को धूम्र रहित रॉकेट स्टोव की दक्षता के साथ जोड़ दिया जाए तो वे काफी लागत प्रभावी हो सकते हैं। रॉकेट स्टोव सस्ते, आसानी से उपलब्ध सामग्री का उपयोग करके अविश्वसनीय रूप से सुलभ तकनीक वाला उपकरण है। ईको रॉकेट का अपेक्षित जीवनकाल लगभग 10 वर्ष है, धूम्ररहित संस्करण का जीवन काल इसके उपयोग और रखरखाव के आधार पर भिन्न हो सकता है। यदि इसके उपयोग की वैधता कम है तो इसे आसानी से बनाया भी जा सकता है।

मिट्टी का धूम्र रहित रॉकेट स्टोव बनाने की विधि

स्थानीय मिट्टी को लें और उसे अच्छी तरह छानकर पाउडर बनाए (4 भाग)। मिट्टी को आसानी से चिपकने योग्य बनाने के लिए लगभग 1.2 भाग सूखी कटी हुई घास (लगभग 3 इंच लंबी) और 1.2 भाग मुरमुरे (या अन्य फूला हुआ अनाज) मिलाएँ। मिश्रण में चपाती के आटे जैसा महसूस होने तक पानी मिलाएं। मिट्टी के गोले को सही आकार में ढालने के लिए धातु के एक गोल और खोकला साँचे का प्रयोग करें।

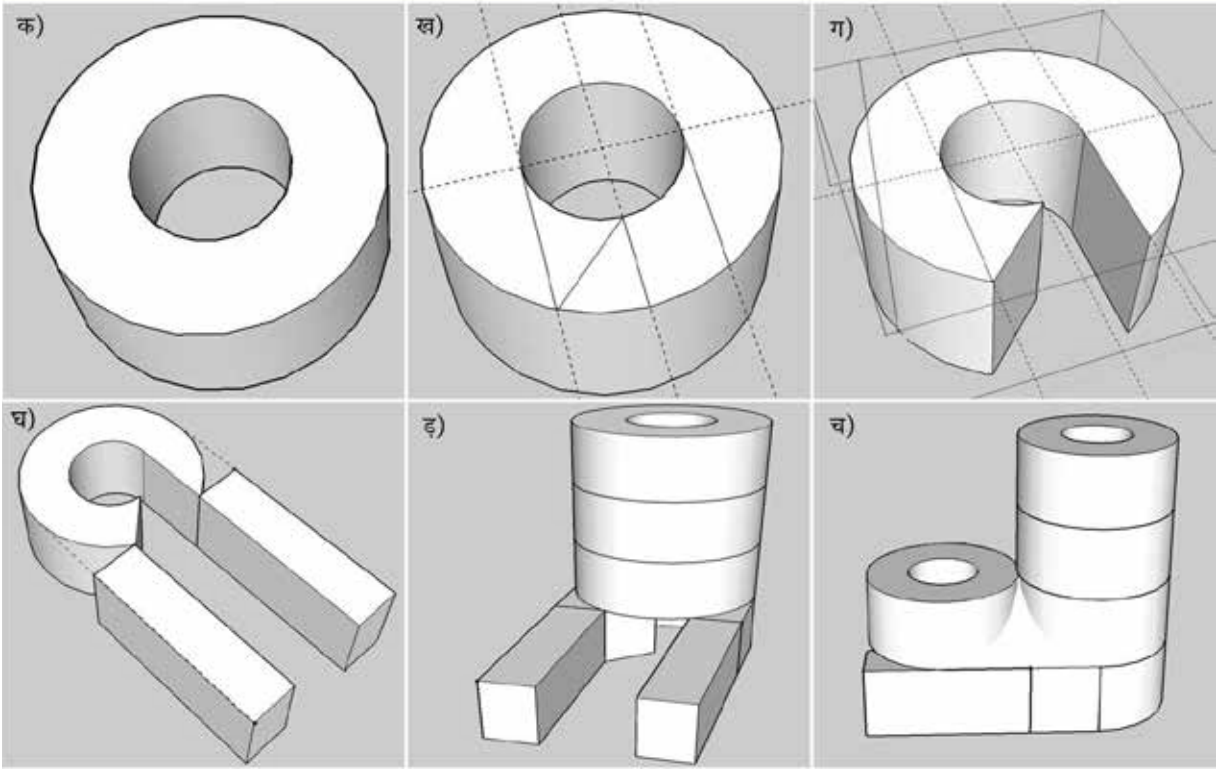

चित्र 3: मिट्टी का रॉकेट स्टोव बनाने की विधि (क) मिट्टी के गोले (ख) गोले में 3 समानांतर रेखाएँ (ग) मिट्टी के गोले को काटने की विधि (घ) कटे हुये मिट्टी के गोले के दोनों ओर मिट्टी की 2 पंक्तियाँ चित्र के अनुसार जोड़े (ड़) चूल्हे की मनचाही ऊंचाई पाने के लिए सभी गोलें (3) एक के ऊपर एक अच्छी तरह से चित्र के अनुसार लगाएँ (च) आखिरी मिट्टी के गोले को तैयार चूल्हे के आधार के ऊपर चित्र के अनुसार रखें। (स्रोतः Himalayanrocketstove.com)

स्टेप 1: गोले बनाना

- उपरोक्त सामाग्री का उपयोग करके मिट्टी के 5 बराबर आकार के गोले बनाएं (चित्र 3क)
- सभी गोलों के अंदर के छेद का व्यास – 5 इंच के पार (125 मिमी)
- सभी गोलों के दीवार की मोटाई – 3 इंच (75 मिमी)
- सभी गोलों के की ऊंचाई – 6 इंच (152 मिमी)

स्टेप 2: आग को घूमाने वाले मिट्टी के 1 गोले को तैयार करना

- मिट्टी के 1 गोले में 3 समानांतर रेखाएँ बनाएं (चित्र ख)
- एक पुरानी आरी या किसी भी प्रकार की तेज धार वाली धातु का उपयोग करके मिट्टी को काट लें (चित्र 3ग); काटने से पहले सुनिश्चित करे की मिट्टी थोड़ी नरम हो लेकिन बहुत गीली नहीं हो।
- पहले गोले को एक तरफ से छेद के केंद्र में दिखाये गए चित्र के अनुसार काटें।
- विकर्ण को अंदर के केंद्र छेद से बाहरी किनारे तक काटें जहां गोले के अंदर का हिस्सा गोले के भीतरी छेद की चौड़ाई का लगभग आधा हो।

स्टेप 3: चूल्हे का आधार तैयार करना

- आधे कटे हुये मिट्टी के गोले को ले ओर उसके आगे के आधार को ईंटों या अधिक मिट्टी से बढ़ाए (चित्र 3घ)।
- अब कटे हुये मिट्टी के गोले के दोनों ओर के खाली जगह को भरें ताकि मिट्टी की 2 पंक्तियाँ आधार गोले से बिना किसी रिक्त स्थान के जुड़ जाएँ।
- चूल्हे की मनचाही ऊंचाई पाने के लिए सभी गोलें (3) एक के ऊपर एक अच्छी तरह से लगाएँ (चित्र 3ड़)।
- ये बाहर से खुरदुरे होंगे इसलिए यह सुनिश्चित करना अधिक महत्वपूर्ण है कि सभी एक के ऊपर एक रखे हुए गोलों के छेद अंदर की तरफ से एक समान हों।
- बाहर से इसे बाद में चिकना भी किया जा सकता है।

स्टेप 4: पूर्णतः चूल्हा बनाना

- आखिरी मिट्टी के गोले को तैयार चूल्हे के आधार के ऊपर रखें (चित्र 3च)। यह आग के करीब होने पर हवा को बेहतर तरीके से जलने में मदद करता है।
- फिर मिट्टी का उपयोग करके बीच के अंतराल को भरें।
- बर्तन को ऊपर रखने के लिए लगभग 1 इंच ऊंची मिट्टी की 3 गांठें (या 3 पत्थर) बनाए और इसे सबसे ऊपरी मिट्टी के गोले के ऊपर चिपका दें।
- तैयार चूल्हे को अच्छी तरह से सूखने दें।
- चूल्हे में एक बर्तन उपयोग करने की स्थिति में एक ईंट या धातु या टाइल का टुकड़ा उसके मुहाने पर इस प्रकार से लगा दें की वह खंड के अंत को बंद कर दे। यह सुनिश्चित करें की इसे बाद में हटाया जा सके ताकि चूल्हे के अंदर की राख को आसानी से साफ किया जा सके (चित्र 4क, ख)।

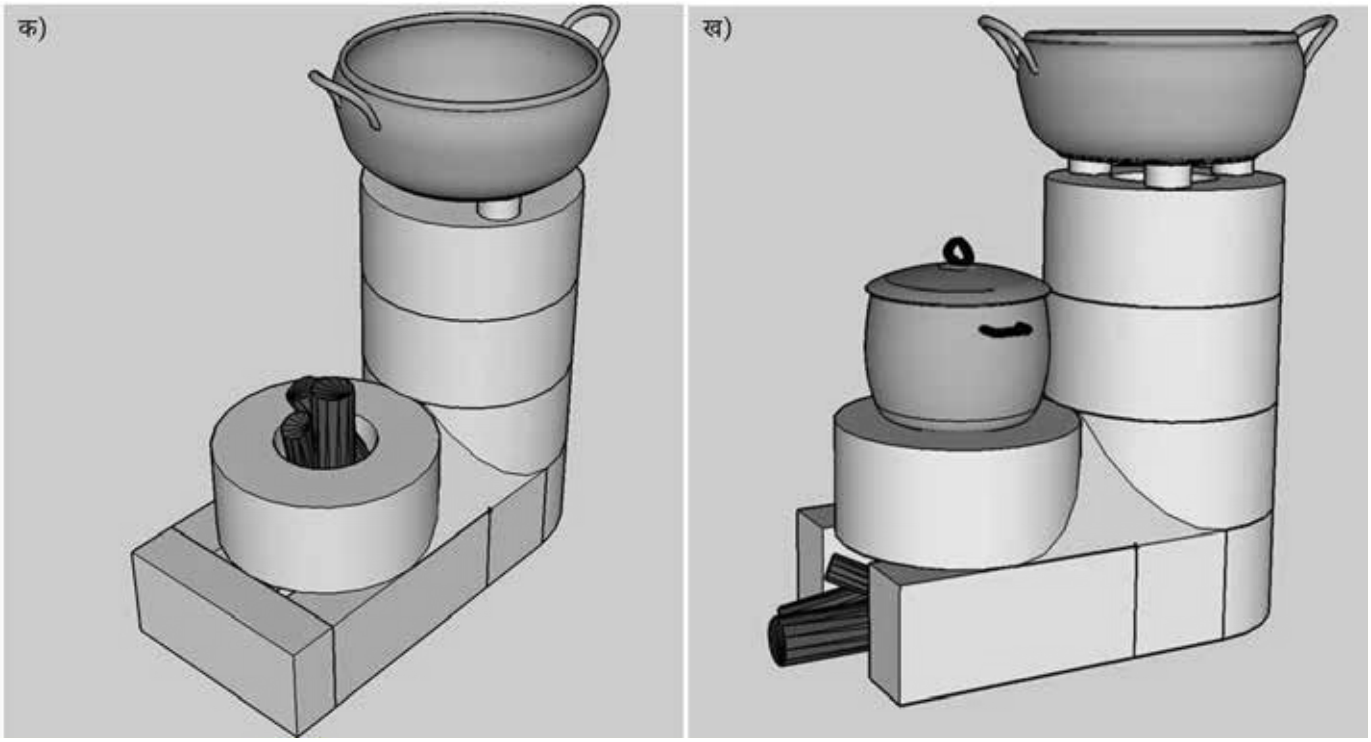

चित्र 4: (क) एक बर्तन उपयोग करने की स्थिति (ख) दो बर्तन एक साथ उपयोग करने की स्थिति (स्रोतः Himalayanrocketstove.com)

निष्कर्ष

- तापीय ऊर्जा भारत में बिजली उत्पादन का सबसे बड़ा स्त्रेत है यह कोयला, डीजल , प्र तिक गैस आदि जैसे ईध ान पर आधारित हैद्य हालाँकि बिजली का प्रमुख उत्पादन कोयले के माध्यम से पारपत किया जाता है जोकि ताप विद्युत सन्यत्र है कुल बिजली उत्पादन का लगभग 75 : है।
- बढ़ती जनसंख्या के साथ साथ भारत में ऊर्जा की मांग भी बढ़ रही है जिससे बिजली उत्पादन भी बढ़ते जा रहे है। भारत में बिजली उत्पादन ज्यादातर कोयला आधारित है परंतु कुछ दूरस्थ ग्रामीण क्षेत्रें में अभी भी ऊर्जा कुशल नहीं है और लोग अभी भी लकड़ी का उपयोग विभिन्न कार्य को पूरा करने के लिए करते है जिसमे खाना बनाना, पनि गर्म कारण इत्यादि शामिल है। लकड़ी लाने के लिए ग्रामीण औरतों को ही ज्यादातर जंगलो में दूर जाना पड़ता है जिसमें उनको समय लग जाता है। इससे लकड़ी की खपत भी अधिक होती है।
- इसके इलावा इससे निकलने वाला धुआँ स्वास्थ्य के साथ साथ पर्यावरण पर भी बदते जलवायु परिवर्तन के साथ काफी गलत प्रभाव डाल रहा है।
- हिमाचल प्रदेश तथा लद्दाख जैसे पहाड़ी क्षेत्रें में ज्यादातर सर्दियों में ठंड से बचने के लिए लकड़ियों का उपयोग किया जाता है। लकड़ी की खपत को कम करने तथा सही मात्र में ऊर्जा का उपयोग करने के लिए ग्रामीण क्षेत्रें में कुछ ऊर्जा कुशल तकनीकों को अपनाया गया है। जिसमें हिमाचल प्रदेश में जागृति द्वारा हमाम, प्रैशर कूक्कर, तथा तरली त पैट्रोलियम गैस स्टोव और लद्दाख में रसेल कोल्लिन्स द्वारा रॉकेट स्टोव प्रसार शामिल है।
- रॉकेट स्टोव एक सतत तकनीक है क्योंकि इसे प्रा तिक सामग्री से मिलकर बनाया जाता है। इसमें गोबर के उपलों तथा छोटी लकड़ियों का उपयोग किया जाता है जो लकड़ी की खपत को तो कम करती है बल्कि बिजली का अत्यधि ाक उपयोग भी कम होता है जिससे यह एक सतत तकनीक है जो बदलते जलवायु के अनुकूल है। अतः ऐसे जलवायु अनुकूल तकनीकों को भारत के अन्य दूरस्थ ग्रामीण क्षेत्रें तक पहुंचाया जाना चाहिए तथा इन्हें और अधिक पर्यावरण के अनुकूल तरीकों से बनाया जाना चाहिए।

हिमाचल प्रदेश में सेब की बागवानी द्वारा आजिविका सम्वर्धन

राकेश कुमार सिंह एवं विक्रम जीत,

गोविन्द बल्लभ पन्त राष्ट्रीय हिमालयी पर्यावरण संस्थान, हिमाचल क्षेत्रीय केन्द्र, कुल्लू-175126, हिमाचल प्रदेश, भारत

1. परिचय

हिमाचल प्रदेश एक पर्वतीय राज्य है और यहां के लोगों के आर्थिक जीवन और समृद्धि में बागवानी एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। पिछले तीन दशकों के दौरान हिमाचल प्रदेश ने बागवानी के क्षेत्र में जबदस्त प्रगति की है। राज्य के 9 जिलों में प्रचलित भौगालिक विशेषताएं और जलवायु परिस्थितियां फलों की खेती के लिए आदर्श रूप से अनुकूल हैं। राज्य के पर्वतीय जिलों के निवासियों की आय का एक प्रमुख स्रोत सेब उत्पादन है। सेब एक महत्वपूर्ण शीतोष्ण फल है। सेब ज्यादातर ताजा खाया जाता है लेकिन उत्पादन का एक छोटा सा हिस्सा जूस, जैम, जैली, डिब्बाबंद स्लाइस और अन्य वस्तुओं में संसाधित किया जाता है। वर्तमान समय में हिमाचल प्रदेश के बागवान विभिन्न नवीनतम वैज्ञानिक तकनीक अपनाकर सेब की अच्छी पैदावार प्राप्त कर रहे हैं।

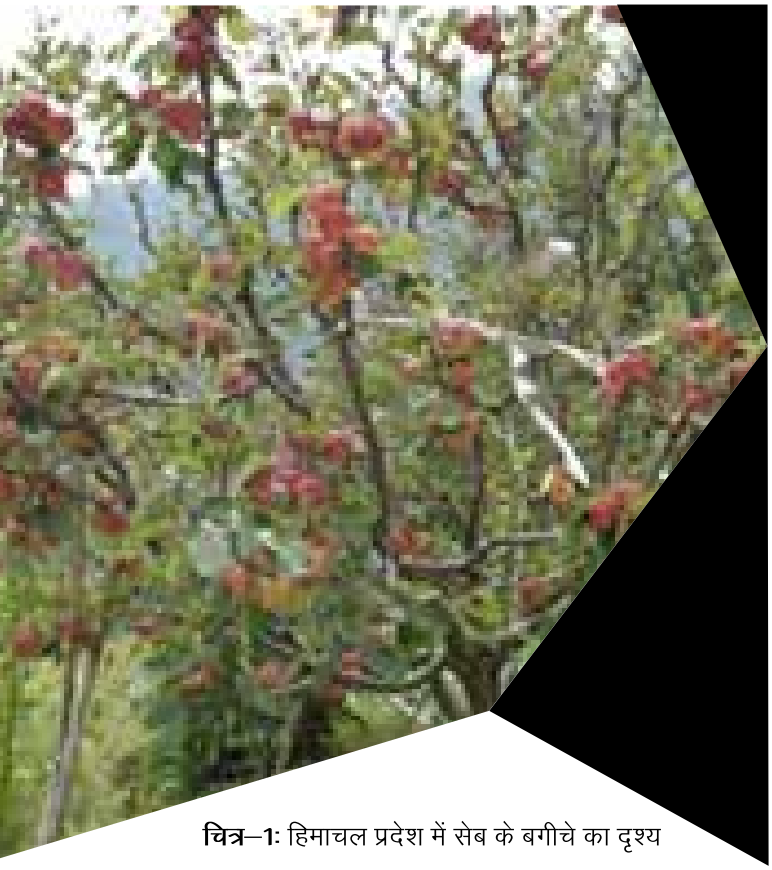

चित्र–1: हिमाचल प्रदेश में सेब के बगीचे का दृश्य

2. सेब के लिये उपयुक्त जलवायु एवं मृदा

हिमाचल प्रदेश में सेब की बागवानी के लिए सक्रिय वृद्धि अवधि के दौरान औसतन तापमान लगभग 21–24°C होना चाहिए। सेब उन क्षेत्रों में सबसे अच्छा सफल होता है जहां पेड़ सर्दियों में निर्बाध आराम करते हैं और अच्छे रंग के विकास के लिए प्रचुर मात्रा में धूप का अनुभव करते हैं। सेब को कुल्लू घाटी में 1500–2700 मीटर की ऊँचाई पर उगाया जा सकता है। इश्टम विकास और फलने के लिए, सेब के पेड़ों को 100–125 सेंटी मीटर वार्शिक वर्षा की आवश्यकता होती है। फलों की परिपम्वता के दौरान अत्यधिक बारिश और कोहरे के परिणामस्वरूप फलों की गुणवत्ता खराब हो जाती है और फलों की सतह पर अनुचित रंग विकास और कवक के धब्बे हो जाते हैं। हवा के उच्च वेग वाले क्षेत्र में सेब की खेती वांछनीय नहीं है।

हिमाचल प्रदेश में सेब की बागवानी के लिए मृदा अच्छी तरह से सूखी, दोमट मिट्टी पर 45 सेंटी मीटर की गहराई और पीएच रेंज पर अच्छा पर सबसे अच्छा बढ़ता है। सेब लगाने के लिए मिट्टी कठोर और जल–जमाव की स्थिति से मुक्त होनी चाहिए। कठोर या संघन मिट्टी में सेब के पौध लगाने से बचना चाहिए। शुष्क शीतोष्ण क्षेत्र सेब की खेती के लिए उपयुक्त होते हैं। इन क्षेत्रों में उत्पादित फल में अधिक मिठास और लम्बे समय तक उच्च गुणवत्ता वाले होते हैं। सेब का उत्पादन मृदा में उपलब्ध पोषक तत्वों की गुणवत्ता एवं संस्तुति के आधार पर आवश्यकतानुसार पौध रक्षा रसायन के उपयोग पर निर्भर करता है। मृदा में उपलब्ध सूक्ष्म पोषक तत्वों का पता मृदा परीक्षण द्वारा ज्ञात किया जा सकता है। मृदा परीक्षण उपरान्त बागवानों में पौधे लगाने चाहिए। जिसके आधार पर बागवान अपने खेतों में पोषक तत्वों का सही मात्रा में प्रयोग कर अनावश्यक व्यय से बचते हैं बागवानी लागत में कमी कर सेब का उत्पादन बढ़ा सकते है।

3. सेब की किस्में

भारत एक उष्णकटिबंधीय देश होने के कारण मध्यम जलवायु वाले कुछ क्षेत्र हैं जिसमें हिमाचल प्रदेश जैसे पहाड़ी क्षेत्रों को इस स्थिति से लाभ होता है और सेब उत्पादकों के लिए फायदेमंद

साबित हुआ है। हिमाचल प्रदेश में सेब की 20 से अधिक किस्मों का उत्पादन किया जाता है जिसमें मुख्यतः 10–12 किस्मों का अधिक उत्पादन किया जाता है जो निम्न प्रकार से है:–

- **रेड डेलिसियसः** हिमाचल प्रदेश की यह एक लोकप्रिय किस्म है, यह बड़े और आयताकार–शंकु आकार के सेब पैदा करती है। इस गहरे लाल सेब का स्वाद हल्का मीठा और कोमल होता है यह पूरे साल बढ़ता है और कच्चे उपयोग के उद्देश्यों के लिये प्रसिद्ध है।

- **गोल्डन डेलिसियसः** हिमाचल प्रदेश में सेब की यह किस्म भी लगाई जाती है इन सेबों की त्वचा हरी पीली होती है। स्वाद मीठा होता है, जो इसे सलाद, सेब मक्खन और सॉस का मुख्य घटक बनाता है।

- **मैकिन्टोश सेबः** यह सेब लाल–हरी त्वचा और सफेद मांस का मिश्रण होने के कारण, इस किस्म के सेब का स्वाद मीठा–तीखा होता है। यह कच्चे उपयोग, खाना पकाने और पाई तैयार करने के लिए बहुत अच्छा होता है।

- **ग्रेनी स्मिथः** सेब की यह किस्म अन्य सेबों के विपरीत होती है। यह सफेद डॉट्स के साथ हरे छिलके वाला और रसदार तीखा–अम्लीय होता है। इसे पाई, केक और पेस्ट्री को संसाधित करने के लिए एक बढ़िया विकल्प माना जाता है तथा इसमें उच्च स्तर के एंटिऑक्सिडेंट और फिनोल होते हैं।

- **हनीक्रिस्पः** यह किस्म लम्बे समय तक अपने कुरकुरापन और शेल्फ जीवन को बरकरार रखता है और इसमें एक मीठा–तीखा स्वाद होता है। यह सेब कच्चे उपयोग और पेय पदार्थों के लिए एक अच्छा विकल्प है।

- **सुनेहरीः** यह संकर किस्म हिमाचल प्रदेश में भी विकसित की जा रही है और यह अंबरी और सुनहरे स्वादिस्ट सेब का परिणामी क्रॉस है। यह सेब लाल रंग की धारियों और पीले छिलके वाला होता है। मीठे–एसिटस स्वाद के साथ रसदार होता है।

- **लाल अंबरीः** यह एक स्वदेशी संकर किस्म है, इस किस्म को रेड डेलिसियस अंबरी सेब की किस्मों को पार करके विकसित किया गया है। इसमें एक मीठा–रसदार स्वाद होता है।

- **टाइडमैन अर्लीः** इस किस्म के सेब में पीले–हरे रंग के आधार के साथ लाल–लाल रंग की त्वचा होती है। इसके कुरकुरे और रसीले गूदे के साथ तीखा–मीठा स्वाद होता है। यह सेब सलाद में अच्छा लगता है।

- **फूजी सेबः** इस किस्म का सेब गोल आकार और लाल–हरे रंग की त्वचा के साथ आकार में बड़ा होता है। इसे कच्चे उपयोग के लिए पहली पसंद माना जाता है।

- **गालाः** गाला सेब की किस्म आकार में तुलनात्मक रूप से बड़े होते हैं। सेब का छिलका मीठा और रसीला होता है। इसे स्नैक्स,जूस और सलाद के लिए अच्छा माना जाता है।

4. हिमाचल प्रदेश में ऊंचाई के अनुसार रूटस्टॉक/किस्मों की उपयुक्तता और उपयोगिताः

क्रम संख्या	ऊंचाई (मीटर)	रूटस्टॉक	किस्में (वैरायटी)
1.	1200 तक	एम 7, एमएम 106, एमएम 111,	अन्ना, डोरसेट गोल्डन, माइकल क्लोमिट
2.	1200–1800	एम 7, एमएम 106, एमएम 111, मर्टन 793 और सीडलिंग रूटस्टॉक	स्कारलेट स्पर, सुपर चीफ, अर्ली रेड वन, गेल गाला
3.	1800–2200	एम 7, एमएम 106, एमएम 111 और सीडलिंग रूटस्टॉक	रेड चीफ, ओरेगन स्पर 11, वांस डिलिशियस, गेल गाला
4.	2200–2400	एम 7, एमएम 111, मर्टन 793 और अंकुर जड़–रूटस्टॉक	रॉयल डिलिशियस, रेड डिलिशियस, गोल्ड़न

5. बागवानी के लिए अनुशंसित व्यावसायिक रूप से संभावित किस्में

- **वांस डिलिशियस, टॉप रेड, ब्राइट–एन अर्ली और गेल गाला:** मध्यम ऊंचाई के लिए उपयुक्त जहां मानक किस्मों में रंग विकास की समस्या है, उपज 80–100 किलाग्राम प्रति पेड़ और अन्य मानक किस्मों की तुलना में 10–15 दिन पहले रंग विकास होता है।

वांस डिलिशियस

ब्राइट–एन अर्ली

टॉप रेड

गेल गाला

- **स्पर प्रकार की किस्में:** रेड चीफ, ओरेगन स्पर, वैल स्पर और सिल्वर स्पर। मानक किस्मों की तुलना में 30–40 प्रतिशत बौना, नियमित असामयिक, बेहतर फल रंग और गुणवत्ता के साथ अधिक उपज देने वाली किस्में हैं।

रेड चीफ

ओरेगन स्पर

वैल स्पर

- **परागणकर्ता की नई किस्में:** गोल्डन स्पर, स्कारलेट गाला, रेड फूजी और क्रेव सेब की किस्में है। यह किस्में लम्बे समय तक फूलने की अवधि, लगभग सभी व्यावसायिक किस्मों के साथ तालमेल और फलों का उच्च व्यावसायिक मूल्य के लिए प्रसिद्ध है।

गोल्डन स्पर

स्कारलेट गाला

रेड फूजी

क्रेव सेब

- **अन्य मानक किस्में:** रॉयल डिलिशियस और रेड डिलिशियस की उपज 100–120 किलो ग्राम प्रति पेड़।

रॉयल डिलिशियस

रेड डिलिशियस

6. सेब के प्रोपेगेशन की विधियां

सेब का प्रोपेगेशन मुख्यत: तीन प्रकार से किया जाता है जो निम्नलिखित है:–

- **ग्राफ्टिंग विधि:** सेब को कई विधियों द्वारा प्रोपेगेशन किया जाता है जैसे; कोडा, जीभ, फांक और जड़ों की ग्राफ्टिंग। जीभ और क्लेफ्ट ग्राफ्टिंग फरवरी–मार्च के दौरान कॉलर से 10–15 सेंटीमीटर ऊपर करने से सबसे अच्छे परिणाम मिलते हैं। आमतौर पर ग्राफ्टिंग सर्दियों के अन्त में की जाती है।

चित्र–2: सेब की ग्राफ्टिंग विधि द्वारा प्रोपेगेशन

- **बडिंग ग्राफ्टिंग विधि:** सेब को ज्यादातर शील्ड बडिंग द्वारा तैयार किया जाता है, जो उच्च प्रतिशत सफलता देता है। शील्ड बडिंग एक कली के साथ–साथ तने के ढाल के टुकड़े को स्कोन के साथ काटा जाता है और नीचे डाला जाता है। सक्रिय विकास अवधि के दौरान 'टी' आकार के चीरे के माध्यम से रूटस्टॉक के छिलके के नीचे डाला जाता है। बडिंग तब की जाती है जब गर्मियों में कलियाँ पूरी तरह से बन जाती है। हिमाचल प्रदेश में बडिंग होने का इष्टतम समय मई–जून होता है।

- **रूटस्टॉक ग्राफ्टिंग विधि:** सेब के अधिकांश पौधे के अंकुर सीडलिंग पर ग्राफ्टेड किए जाते हैं। अंकुर रूटस्टॉक गोल्डन डिलिशियस, येलो न्यूटन, वेल्थ, मैकिंटोशो जैसी द्विगुणित किस्मों के बीजों से और ग्रेनी स्मिथ का भी इस्तेमाल किया जाता है।

7. सेब पौध रोपण का समय और विधि

सेब पौध रोपण की दूरी मिट्टी की विविधता और उर्वरता स्तर के अनुसार भिन्न होती है। पेड़ लगाने में सोच विचार करके प्रभावी परागण सुनिश्चित करने के लिए पर्याप्त परागणकों का रोपण करना होता है। आमतौर पर 10 मीटर की दूरी पर लगाए गए दो से तीन बड़े पेड़ों के लिए एक परागण पेड़ की आवश्यकता होती है या मुख्य किस्म की दो पंक्तियों के लिए एक परागणक की आवश्यकता होती है। उच्च घनत्व रोपण के लिए हर छठे पेड़ के बाद परागण पेड़ लगाया जाता है। सबसे व्यापक रूप से इस्तेमाल की जाने वाली रोपण प्रणाली में वर्ग प्रणाली है। इस प्रणाली मे हर छठे या नौवें पेड़ के बाद परागण पेड़ लगाए जाते हैं। एक हेक्टेयर क्षेत्र में सेब पौधों की औसत संख्या 200–1200 के बीच हो सकती है। रोपण घनत्व की चार विभिन्न श्रेणियों का पालन किया जाता है। कम घनत्व (250 पौधे/हेक्टेयर), मध्यम घनत्व (250–500 पौधे/हेक्टेयर), उच्च घनत्व (500–1250 पौधे/हेक्टेयर) और अत्यधिक उच्च घनत्व (1250 से अधिक पौधे/हेक्टेयर)। रूटस्टॉक और स्कोन किस्म का संयोजन पौधे की और रोपण घनत्व पर निर्धारित किया जाता है।

सेब पौध का रोपन आमतौर पर जनबरी और फरबरी महिने में किया जाता है। रोपन से दो सप्ताह पहले 60/60 सेंटीमीटर के गडढ़े खोदे जाते हैं। गडढों में अच्छी दोमट मिटटी और कार्बनिक पदार्थ भरे जाते हैं। मिटटी खुरच कर पौधे की जड़ों को बरकरार गडढ़े के केन्द्र में रोपित किया जाता है। ढीली मिटटी को शेष क्षेत्र में भर दिया जाता है और हल्के से मिटटी को दबाया जाता है। रोपाई के बाद पानी दिया जाता है।

8. सिंचाई

सेब के पेड़ विशेष रूप से मिटटी की नमी के प्रति संवेदनशील हेते हैं। बदलते मौसम के दौरान पानी की कमी से फलों संख्या और आकार कम हो जाता है और फलों की गिरावट बढ़ जाती है। सेब की सफलता काफी हद तक वर्ष के दौरान वर्षा के समान वितरण पर निर्भर करती है यदि महत्वपूर्ण अवधि के दौरान शुष्क के मामले में पूरक सिंचाई प्रदान की जानी चाहिए। पानी की कमी की स्थिति के परिणामस्वरूप खराब फल सेटिंग, फल गिरना, कम उत्पादन और खराब गुणवत्ता होती है। सिंचाई की आवश्यकता सबसे अधिक अप्रैल–अगस्त के बीच में होती है और अधिकतम पानी की आवश्यकता फल लगने के बाद होती है। आमतौर पर दिसम्बर–जनवरी के महिने में खाद डालने के तुरंत बाद बगीचों की सिंचाई कर दी जाती है। ग्रीष्म काल में सिंचाई 7–10 कदनों के अन्तराल में की जाती है तथा फल लगने की अवस्था के बाद साप्ताहिक पर सिंचाई की जाती है। फल तोडान के पहले पखवाडे के दौरान सिंचाई के प्रयोग से फलों के रंग में स्पष्ट रूप से सुधार होता है। तत्पश्चात सुप्तावस्था की शुरूआत तक 3–4 सप्ताह के अन्तराल पर सिंचाई करनी चाहिए।

9. प्रूनिंग (कांट–छांट)

प्रूनिंग सबसे महत्वपूर्ण अभ्यासों में से एक है जो पौधों की शक्ति और उत्पादकता को बढ़ाता है। फलों की शाखाओं की ओर रस प्रवाह मोड़ने, पौधों को अधिक फल देने के लिए और पौधे के विकास को प्रेरित करने के लिए प्रूनिंग की जाती है। छंटाई के दौरान कमजोर और रोगग्रस्त शाखाओं को पेड़ से हटा दिया जाता है। आमतौर पर पेड़ों को हर साल दिसम्बर–जनवरी के महिने में कांट–छांट की जाती है। कांट–छांट का कार्य पतझड़ के बाद नवम्बर–दिसम्बर माह से शुरू करके माह फरवरी–मार्च तक समाप्त कर देना चाहिए। सेब की बागवानी में अपनाई जाने वाली प्रूनिंग की प्रणालियां इस प्रकार हैं:–

- **स्थापित स्पर सिस्टम:** इस प्रूनिंग का उद्येश्य फलों के उत्पादन के लिए स्थाई फल स्पर विकसित करना है। पार्श्वों पर स्पर्स के गठन को सुनिश्चित करने के लिए केन्द्र के मुख्य लीडर के पास मजबूत खड़े पार्श्वों के साथ हर साल केन्द्रीय लीडर काट दिया जाता है। इससे स्पर्स के निर्माण के लिए चौड़े कोण वाले अच्छे पार्श्व बनते हैं।

- **विनियमित प्रणाली:** आमतौर पर अर्ध–बौने और अच्छे रूटस्टॉक पर उगने वाले सेब की किस्मों पर विनियमित प्रणाली छंटाई का अभ्यास किया जाता है। रोपन से पहल, पेड़ के केन्द्रीय लीडर को 75 सेंटीमीटर पर काट दिया जाता है, जिस पर तीन अच्छी से स्थित प्राथमिक शाखाओं को बढ़ने दिया जाता है। मजबूत पेड़ों में, कमजोर और अत्यधिक शाखाओं को काटकर केन्द्र लीडर और मजबूत पार्श्वों की वृद्धि को प्रात्साहित किया जाता है।

- **नवीनीकरण प्रणाली:** स्थाई स्पर्स विकसित करने के बजाय अच्छी बागवानी में, हर साल नए शूट, स्पर्स और शाखाओं के निरन्तर विकास को प्रोत्साहित करना है। नए अंकुर के विकास पर अगले वर्ष फल देने के लिए पेड़ के एक हिस्से को हर साल काट दिया जाता है, जबकि बिना कटे हिस्से को हर साल काट दिया जाता है, जबकि बिना कटे हुए हिस्से में फल की कलियाँ पैदा होती हैं।

10. पौध संरक्षण

- **कीट पतंगे:** सेब के पौधों में सैन जास स्केल (क्वाड्रास्पिडियोटस पेर्निसियोसस), सफेद स्केल (स्यूडौलाकैस्पिस एसपी), ऊनी सेब एफिड (एरियोसोमा लेनिगेरम), ब्लॉसम थ्रिप्स (थ्रिप्स रोपालेंटेनेलिस) आदि कीट पतंगे ज्यादातर देखे जाते हैं। प्रतिरोध ी रूटस्टॉक्स का रोपण, उपयुक्त इंटरकल्चरल ऑपरेशन और क्लोरोपायरीफॉस, फेनिट्रोथियोन, कार्बेरिल आदि का छिड़काव कीटों को नियंत्रि में प्रभावी पाया गया है।

- **रोग:** सेब के पौधों में मुख्य बीमारियां कॉलर रौट (फाइटोफ्थोरा कैक्टोरम), स्कैब (वेंटुरिया इनैक्लिस), स्क्लेरोटियस ब्लाइट (स्क्लेरोटियस रॉल्फिस), क्राउन पित्त स्क्लेरोटियस

(एग्रोबैक्टीरियम टूमफेशियन्स), कैंकर, डाई–बैक रोग आदि हैं। सेब की बागवानी के लिए रोग प्रतिरोधी पौधों का उपयोग किया जाता है। संक्रमित पौधों के हिस्सों को नष्ट करने की जरूरत होती है। कॉपर ऑक्सीक्लोराइड, कार्बेन्डाजिम, मैनकोजेब और अन्य फफूंदनाशकों का प्रयोग रोगों को नियंत्रित करने में प्रभावी पाया गया है।

11. सेब का तोड़ान (हार्वेस्टिंग)

आमतौर पर हिमाचल प्रदेश में सेब अगस्त–सितम्बर तक तोड़ान के लिए तैयार होता है। फूल खिलने के बाद 130–150 दिनों में सेब का फल परिपक्व हो जाता है जोकि उगाई गई किस्म पर निर्भर करता है। फलों के पकने का संबंध रंग, बनावट, गुणवत्ता में परिवर्तन और विशिष्ट स्वाद के विकास से होता है। तोड़ान के समय फल एक समान, दृढ़ और कुरकुरा होना चाहिए। फल परिपक्वता सेब का रंग विविणता के आधार पर पीले–लाल से लेकर हाता है। हालांकि, फसल का इष्टतम समय फलों की गुणवत्ता और भण्डारण की अवधि पर निर्भर करता है।

12. निष्कर्ष

हिमाचल प्रदेश में लोगों की आजिविका का मुख्य साधन कृषि, बागवानी एवं पर्यटन है। हिमाचल प्रदेश के कृषक आज व्यापक रूप से बागवानी को व्यवसायिक रूप से अपना रहे हैं तथा विभिन्न वैज्ञानिक तकनीकों का प्रयोग करके प्रतिवर्ष अच्छी पैदावार प्राप्त कर रहे है। वैज्ञानिक तरीके से की गई बागवानी से सेब की अच्छी गुणवत्ता प्राप्त होने से बाजार में सेब का अच्छा मूल्य प्राप्त कर कृषक अपनी आजिविका सम्वर्धन कर रहे हैं। कृषक बागवानी के साथ साथ नकदी फसलों का उत्पादन करके अथवा पर्यटन व्यवसाय से जुड़कर भी आय सृजित कर रहे हैं। बागवान विभिन्न संस्थानों से जुड़कर प्रशिक्षण के माध्यम से बागवानी में व्यवसायिक ज्ञान प्राप्त कर सेब की नई–नई किस्मों को अपनें बागीचों में लगाकर कम समय में अधिक पैदावार प्राप्त रहे हैं।

हिमालयी क्षेत्रें में बढ़ता शहरीकरण एवं पर्यावरण पर प्रभाव

ट्विंकल ठाकुर और केसर चंद,

गो0 ब0 पंत राष्ट्रीय हिमालयी पर्यावरण संस्थान, हिमाचल क्षेत्रीय केंद्र, मोहल, कुल्लू (हिमाचल प्रदेश)

शहरीकरण को विकास के प्रतीक के रूप में वर्णित किया जाता है। वास्तव में शहरीकरण वह प्रक्रिया है जिसके अंतर्गत शहरों का अधिकतम विकास एवं विस्तार तथा आर्थिक क्रियाओं का केन्द्रीयकरण होता है। हाल के वर्षों के दौरान, शहरीकरण वैश्विक पर्यावरण परिवर्तन के महत्वपूर्ण चालकों में से एक के रूप में उभरा है। पर्वतीय क्षेत्रों में परिवर्तन, विशेष रूप से विकासशील देशों में जहाँ शहरी विकास की प्रक्रिया तेजी से बढ़ रही है परंतु ज्यादातर अव्यवस्थित, अनियोजित और अनियमित है। हिमालय विवर्तनिक रूप से जीवित, घनी आबादी वाले और दुनिया के सबसे सीमांत पर्वतीय क्षेत्रों में से एक का प्रतिनिधित्व करता है जहाँ पिछले तीन दशकों के दौरान तेजी से शहरी विकास का अनुभव किया है। हाल ही में, तुलनात्मक रूप से कम सुलभ क्षेत्र भी तेजी से शहरीकरण की प्रक्रिया के अंतर्गत आ गए है, जिसमें मुख्य रूप से बेहतर सड़क संपर्क, प्रचार और नये पर्यटक स्थलों के विपणन और घरेलु के साथ–साथ परिणामी विकास के लिए अंतर्राष्ट्रीय पर्यटन, बागवानी का विकास, आर्थिक वैश्विकरण और प्राथमिक संस्थान से माध्यमिक और तृतीयक क्षेत्रों के विकास के लिए क्रमिक बदलाव हुए हैं।

हिमालय में शहरी बस्तियों के आकार, क्षेत्र, संख्या और जटिलता में जबरदस्त वृद्धि हुई है, जिसके परिणामस्वरूप शहरी प्रक्रियाओं का विस्तार (अर्थात, आसपास के कृषि क्षेत्र, जंगलों और ग्रामीण वातावरण में शहरी भूमि उपयोग का विस्तार) साथ ही शहर के भीतर शहरी भूमि उपयोग की तीव्रता में वृद्धि (यानी, कवर किये गए क्षेत्र के घनत्व में वृद्धि, भवन के घनत्व, और जनसंख्या के घनत्व में वृद्धि) हुई है। पर्वत विभिन्न प्रकार के पारिस्थितिक तंत्र सेवाओं का निर्माण करते हैं जैसे, ताजा पानी, जैव विविधता और बड़ी आबादी की आजीविका और अर्थव्यवस्था को बनाए रखने वाली मिट्टी इत्यादि।

एक ओर, ऊँचे पहाड़ों में बड़ते शहरी क्षेत्र रोजगार के अवसर, विभिन्न प्रकार की सामाजिक–आर्थिक सेवाओं और बुनियादी ढांचे के विस्तार के अवसर पैदा कर विकास के केंद्र के रूप में कार्य कर रहे हैं, और योगदान दे रहे है, जबकि दूसरी ओर, विशाल शहरी विकास से नाजुक पहाड़ों में महत्वपूर्ण पारिस्थितिकी तंत्र सेवाओं को बाधित कर दिया है। तेजी से और अनियोजित शहरीकरण से हिमालय के जलसंभरों की जल–वैज्ञानिक व्यवस्थाओं को अस्तव्यस्त कर दिया है, और भू–जल पुनर्भरण कम कर दिया है जिससे जल की उपलब्धता जैसे पीने, स्वछता और फसल उत्पादन के लिए कम हो गई है। घटते वन और जैव विविधता, प्राकृतिक खतरों और आपदाओं से बढ़ते जोखिम शहरी क्षेत्रों के साथ–साथ उनके अन्य क्षेत्रों को प्रभावित कर रहे है जिससे स्थानीय निवासियों की पानी, भोजन, आजीविका, और स्वास्थ्य असुरक्षा के प्रति संवेदनशीलता में वृद्धि हुई है। नौकरियों, समृद्धि तथा अन्य कारकों के साथ लोगों का शहरीकरण की ओर ज्यादा खिचाव हो गया है। विश्व की अधिक आबादी पहले से ही शहरों में रह रही है, और 2050 तक दुनिया के दो–तिहाई लोग शहरी क्षेत्रों की ओर स्थानांतरित होने की उम्मीद है। लेकिन निरंतर शहरीकरण से आज दुनिया के सामने सबसे अधिक दबाव वाली समस्याएं भी उत्पन हो गयी है जैसे की गरीबी और पर्यावरण गिरावट। अत्यधिक शहरी विकास से अधिक गरीबी होना, स्थानीय सरकार सभी लोगों के लिए सेवाएं प्रधान करने में असमर्थ हैं।

पर्यावरण पर शहरीकरण का प्रभाव

प्रारंभ में हिमालयी क्षेत्रों में निर्माण गतिविधियां भी बहुत कम थी, उनका विस्तार सिमित था और वहाँ संपादित होने वाली आर्थिक क्रियाओं की संख्या सीमित थी जिसके परिणामस्वरूप पर्यावरण पर कम तनाव था। शहरीकरण का तेजी से विकास के कारण प्राकृतिक संसाधनों, विशेष रूप से जलस्त्रोत, झीलों, नदियों, भूमिगत जल , प्राकृतिक झरनों, जंगलों, जैव विविधता इत्यादि पर दीर्घकालीन प्रभाव पड़ रहा है प्राकृतिक संसाधनों के ऊपर प्रभाव के साथ–साथ प्राकृतिक जोखिम और आपदाओं की घटनाएं अधिक गंभीरता से हो रही है (अचानक आई बाढ़, ढलान की विफलता और भू–स्खलन इत्यादि)।

शहरीकरण के कारण हिमालय क्षेत्रों में भूमि उपयोग परिवर्तन

हो रहा है, जिसमें ज्यादातर कृषि भूमि क्षेत्र तथा स्थानीय भूमि पर पर्यटक स्थान तथा पर्यटन भवन निर्माण इत्यादि हो रहा है जिससे स्थानीय भूमि उपयोग पर बहुत अधिक दबाव पड़ रहा है, और इससे मिट्टी का कटाव, प्रदुषण में वृद्धि, प्राकृतिक आवास का नुकसान और लुप्तप्राय प्रजातियों पर अधिक दबाव पड़ रहा है। बदलते भूमि उपयोग पैटर्न और वन क्षेत्र में गिरावट से जल विज्ञान प्रणाली को हिमालयी कस्बों और शहरों में बाधित कर दिया है जिससे भू–जल पुनर्भरण घट गया है। केंद्रित उर्जा के उपयोग से वायु प्रदूषण बढ रहा है़ और मानव स्वास्थ्य पर भी नकारात्मक प्रभाव देखने को मिल रहे है।

सामाजिक–आर्थिक प्रभाव

खेती योग्य भूमि और अन्य क्षेत्रों का एक बड़ा हिस्सा तेजी से शहरीकरण, बुनियादी ढांचे इत्यादि की प्रक्रिया द्वारा हिमालयी में हर साल अतिक्रमण किया जा रहा है। हिमालयी क्षेत्रों में खेती योग्य भूमि का सर्वाधिक अतिक्रमण पिथौरागढ़ (12.97%) में दर्ज किया गया है। शहरी विकास के कारण महत्वपूर्ण कृषि संसाधन जैसे कृषि भूमि क्षेत्र, बायोमास खाद, सिंचाई के लिए पानी में गिरावट तथा वन कटाव में वृद्धि हुई है। स्थानीय लोग धीरे– धीरे शहरी क्षेत्रों की ओर स्थानांतरित हो रहे है, जिससे शहरी क्षेत्रों में जनसंख्या का प्रवासन बढ़ रहा है जो कि आगे चलकर गंभीर समस्याओं का कारण बन सकता है। शहरी विकास से मुख्य सामाजिक प्रभाव जैसे, लोग पारंपरिक घरों को छोड़ नये प्रकार के घरों में प्रसार कर रहे है, श्रम बाजार में महिलाओं की भागीदारी की दर में वृद्धि, तथा वे निर्णय लेने वाले भी बन गये जो पेशेवर जिम्मेदारियों के साथ पारम्परिक जिम्मेदारियों को संतुलित कर रहे है।

जलवायु परिवर्तन भेद्यता

जलवायु परिवर्तन आज हमारे सामने आने वाले सबसे जटिल मुद्दों में से एक है। यह मानव सभ्यता के लिए सबसे बड़ी चुनौतियों में से एक है। वैश्विक तापमान के पैटर्न में बदलाव, जलवायु परिवर्तन को दर्शाता है। उर्जा के अपेक्षाकृत गहन उपयोग के कारण ग्रीनहाउस गैसों के बढते उत्सर्जन में शहरी गतिविधियों का प्रमुख योगदान है। वातावरण में कार्बन डाइआक्ससाइड के अनुपात में बहुत वृद्धि हो चुकी है जिसकी बजह से पृथ्वी के जलवायु में कई बड़े परिवर्तन हुए है। कई शहरी क्षेत्रों में तेजी से बढ़ रही आबादी जलवायु परिवर्तन के प्रभाव के प्रति सबसे अधिक संवेदनशील है। शहरीकरण से निरंतर पर्यावरण को नुकसान पहुंचता जा रहा है और प्रदुषण बढ़ाता जा रहा है। बड़ते शहरीकरण से हिमालयी क्षेत्र में जलवायु परिवर्तन की विविधता जैसे प्राकृतिक खतरे और आपदाएं (बाढ़, ढलान विफलता और भूस्खलन, सुखा और पानी की कमी और स्वास्थ्य जोखिम) अधिक बार हो रही है जिससे हिमालयन क्षेत्र शहरीकरण से ज्यादा भेद्यत हो रहे है। बढते हुए प्रदुषण, वाहनों से निकलने वाले हानिकारक धुएँ, हानिकारक गैसे जैसैं, मीथेन आदि से जलवायु परिवर्तन हो रहा है।

विभिन्न अध्ययनों में यह देखा गया है की अधिकतम मौसम की घटनाएं जैसे, वार्षिक सर्दी और मानसूनी वर्षा में गिरावट, मौसमी हिमपात और तापमान में उतार–चढ़ाव हो रहा है। जलवायु में देखे गए यह परिवर्तन पारिस्थितिकी तंत्र सेवाओं जैसे पानी की उपलब्धता, आपूर्ति और गुणवत्ता को प्रभावित कर रहे है, तथा जलवायु के प्रति शहरी प्रणालियों की संवेदनशीलता में वृद्धि के कारण प्राकृतिक आपदाओं से लोगों की आजीविका और स्वास्थ्य विशेष रूप से गरीब परिवारों को प्रभावित कर रहे है।

निष्कर्ष

हिमालयी में अनियोजित शहरी विकास न केवल प्राकृतिक संसाधनों को कम कर रहा है और परिस्थिति की तंत्र को बाधित कर रहा है, लेकिन यह सामाजिक–आर्थिक वृद्धि तथा पर्यावरण असमानता दोनों को शहरी और उनके आसपास के अन्य क्षत्रों में बड़ा रहा है। लगभग सभी हिमालयी शहर, पूरी तरह से अनियोजित तरीके से विकसित हुए हैं, जिससे प्राकृतिक पारिस्थितिकी तंत्र पर अत्यधिक प्रभाव पड़ रहा है। हाल के दशकों के दौरान, जलवायु परिवर्तन से वर्षा स्तर में उतार–चढ़ाव की बजह से पारिस्थितिकी रूप से नाजुक, विवर्तनिक रूप से सक्रिय और घनी आबादी वाले शहरी पारिस्थितिकी तंत्र पर दवाव डाल रहा है। शहरीकरण से बढ़ती भेद्यता को महसूस करने के बावजूद हिमालयी क्षेत्रों में जलवायु परिवर्तन से प्रेरित जोखिम के लिए सटीक जलवायु परिवर्तन अनुकूल योजनाएं विकसित नहीं की जा रही हैं। वायु प्रदुषण, अपर्याप्त पानी, अपशिष्ट–निपटान की समस्याएं, उच्च उर्जा खपत बढ़ती जनसंख्या घनत्व और शहरी वातावरण की मांगों के कारण बढ़ रहे हैं। शहरीकरण से तकनीकी, बेहतर परिवहन, संचार, चिकित्सक सुविधाएं, ढांचागत प्रगति गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तथा जीवन स्तर में सुधार का लाभ तो है, परंतु अगर अनियमित निर्माण तथा उचित तकनीकी नीतियों का उपयोग ना हो तो इसके नुकसान अधिक देखने को मिल रहे हैं। हिमालयी क्षेत्रों में शहरी विकास रोका या कम नहीं किया जा सकता है, लेकिन इसे एक एकीकृत शहरी ग्रामीण भूमि उपयोग योजना के माध्यम से अधिक टिकाऊ तरीके से चलाया जा सकता है। वन, जैव विविधता, जल संसाधन और कृषि भूमि के सरंक्षण के लिए प्रभावी भूमि उपयोग नीतियों को विकसित और कार्यान्वित करने की आवश्यकता है। इसे देखते हुए, एक विस्तृत और बड़े पैमाने पर शहरी जोखिम क्षेत्र मानचित्र मानकों का विश्लेषण भू–विज्ञान, सरंचना, स्थल–विज्ञान, भू–आकृति विज्ञान, जनसांख्यिकी, अर्थव्यवस्था, आजीविका, बुनियादी ढांचा, सेवाओं के लिए किया जाना चाहिए।

पर्वतीय श्रेत्रों में देशी मधुमक्खी पालन एवं प्रबंधन से पर्यावरण संरक्षण, फसल उत्पादन एवं सतत आजीविका विकासः कुल्लू घाटी, हिमाचल प्रदेश का एक अध्ययन

डॉ. किशोर कुमार[1] डॉ. के. एस. कनवाल[1] एवं डॉ. आई. डी. भट्ट[2],

[1]गोविन्द वल्लभ पंत राष्ट्रीय हिमालयी पर्यावरण संस्थान, हिमाचल श्रेत्रिय केंद्र, मोहल, कुल्लू, हि.प्र.

[2]गोविन्द वल्लभ पंत राष्ट्रीय हिमालयी पर्यावरण संस्थानए कोसी-कटारमल, अल्मोड़ा, उत्तराखण्ड

मधुमक्खी पालन एक कृषि आधारित व्यवसाय हैं। मधु (शहद) एवं मधुमक्खी की उपयोगिता का भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता के साथ अटूट सम्बन्ध रहा हैं। भारत में मधुमक्खी पालन का उल्लेख प्राचीन वेदोंः ऋग्वेद, अथर्ववेद, उपनिषद, भागवत, गीता, मार्कंडेय पुराण, राज निघंटु, भारत संहिता, अर्थ शास्त्र अमर–कोश, जैन, बौद्ध एवं इस्लामिक धर्मग्रंथों में विस्तार पूर्वक किया गया है। वैशाली मुजफ्फरपुर (बिहार) में स्तूपों के निर्माण में उद्घृत भगवान बुद्ध की भेंट स्मृतियों से भी यह स्पष्ट होता हैं कि जब भी भगवान बुद्ध ने उस स्थान का दौरा किया भिक्षुओं के राजा और उनके लोगों द्वारा भगवान बुद्ध को शहद भेंट किया गया था। भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति में जन्म से मृत्यु तक प्रायः सभी सोलह संस्कारों तथा सभी हिन्दू सामाजिक रीती–रिवाजों, धार्मिक अनुष्ठानों में मधुशहद का उपयोग आवश्यक हैं। भारतवर्ष में पारंपरिक मधुमक्खी पालन एवं शहद उत्पादन का कार्य पशुपालन एव कृषि–वागवानी के साथ–साथ सदियों से पीड़ी दर पीड़ी चलता आ रहा हैं। प्रारंभिक प्रमाणों से ज्ञात में आया हैं कि सर्वप्रथम लकड़ी के खोखले लट्ठों, मिट्टी–पत्थर के घरों की दीवार में मधु घर बनाकर मधुमक्खी पालन एवं शहद उत्पादन के उपयोग में लाया जाता था, क्योंकि प्राचीन समय में सीमित संसाधनों एवं जानकारी के अभाव के कारण केवल उपर्युक्त मौनपालन की प्रणालियाँ ही समाज में प्रचलित थी। प्राचीन समय के घरों की वास्तुकला के प्रमाणों से जानकारी के अनुसार पर्वतीय श्रेत्रें में अधिकांशतः पारम्परिक शैली में गृह निर्माण के प्रारम्भ में ही मधुमक्खी एवं चिरैया (स्पैरो) पक्षी के रहने हेतु विशिष्ट प्रकार के सुरक्षित स्थानों के रखने का प्रावधान होता था जिससे घर में मनुष्यों के अलावा मधुमक्खी एवं चिड़िया का भी संरक्षण सुनिश्चित हो सकें। इस प्रकार की पारंपरिक प्रथाओ से सिद्ध होता हैं कि मनुष्य प्राचीन समय से ही जैव–विविधता के संरक्षण के प्रति अत्यंत जागरूक था। वर्तमान समय में सम्पूर्ण विश्व में देशी मधुमक्खी एवं स्पेरो चिड़ियाँ की आबादी सबसे ज्यादा प्रभावित हुयी हैं अनेक वैज्ञानिक लेखो से इसका स्पष्ट रूप से प्रमाण भी मिलता है। सम्पूर्ण हिमालयी परिश्रेत्र नकदी फसल उत्पादन के साथ–साथ बहुउपयोगी वन्य संसाधनों के उत्पादन में भी सम्पूर्ण भारतवर्ष में अग्रणी भूमिका निभाता हैं हिमालयी फसल एवं अन्य वन्य पदार्थों का उत्पादन भी प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से देशी मधुमक्खियों द्वारा प्रदान की जाने वाली परागण सेवा पर निर्भर करता हैं। वर्तमान समय में खासतौर पर देशी मधुमक्खियों की आबादी में निरंतर गिरावट आने से इनकी संख्या अत्यधिक प्रभावित हई है जिसके फलस्वरूप मधु उत्पादन, परागण प्रबंधन (कृषि एवं वन्य पारिस्थितिकी तंत्र), जैव–विविधता एवं कृषि उत्पादन, पर्यावरण गुणवत्ता एवं सतत ग्रामीण आजीविका विकास की धारा भी प्रभावित हुयी हैं।

देशी मधुमक्खी की आबादी को प्रभावित करने वाले मुख्य कारकः
हिमाचल प्रदेश के पर्वतीय जिलों के विभिन्न विकास खण्डों के पंचायतों एवं गाँवों के अनेक मधुमक्खी पालकों से हिमाचल प्रदेश में देशी मधुमक्खी पालन प्रबंधन संबंधी विभिन्न पहलुओं पर अध्ययन हेतु सर्वेक्षण के दौरान वार्तालाप एवं संस्थान द्वारा विगत वर्षो में देशी मधुमक्खी पालन एवं प्रबंधन से आजीविका विकास पर आधारित आयोजित प्रशिक्षण कार्यक्रमों के दौरान प्रशिक्षण हेतु विभिन्न श्रेत्रों से आये प्रतिभागियों से परस्पर संवाद एवं उपलब्ध समकालीन वैज्ञानिक अध्ययनों से स्पष्ट संकेत मिला है कि हिमाचल प्रदेश एवं अन्य हिमालयी श्रेत्रों में देशी मधुमक्खियों की आबादी में साल दर साल कमी हो रही और मधुमक्खियों की आबादी को प्रभावित करने वाले मुख्य कारक निम्नांकित हैंः

1. पर्वतीय श्रेत्रों में पारम्परिक शैली के मिट्टी, पत्थर, एवं लकड़ी के घरों के स्थान पर आधुनिक शैली के सीमेंट, टाइल्स एवं संगमरमर के घरों का निर्माण

2. कृषि में अत्यधिक रासायनिक उर्वरकों एवं कीट नाशकों का उपयोग

3. जलवायु परिवर्तन

4. पारम्परिक मिश्रित खेती के स्थान पर एकल खेती हेतु नकदी फसलों की खेती का प्रचलन

5. मौन वंशीय पुष्पीय पादपों की आबादी में कमी एवं मधुमक्खियों हेतु प्राकृतिक आवास एवं प्राकृतिक खाद्य संसाधनों का निरंतर ह्रास

6. समाज के विभिन्न श्रेत्रो ग्रामीण/शहरी आबादी हेतु मधुमक्खियों द्वारा प्रदत्त प्रत्यक्ष एवं परोक्ष सेवाओं जैसे जैव विविधता, पर्यावरण संरक्षण, फसल विकास, खाद्यान सुरक्षा, मधु उत्पादन एवं आजीविका विकास से संबंधित महत्वपूर्ण कार्यक्रमों की कमी

7. समाज में मधुमक्खियों के संरक्षण एवं मौन वंशीय पुष्पीय पादपों के वृक्षारोपण संबंधी जागरूकता की कमी

8. पर्वतीय देशी मधुमक्खी के संभावित आवास श्रेत्रों में विदेशी प्रजाति की मधुमक्खियों की उपस्थिति

9. देशी मधुमक्खी पालन प्रबंधन प्रशिक्षण संबंधी कार्यक्रमों के आयोजनों की सूचना प्रसारण के विभिन्न माध्यमों से व्यापक प्रचार प्रसार की कमी

10. देशी मधुमक्खी पालन प्रबंधन की रोजगार परख योजनाओं में ग्रामीण शहरी युवाओं की भागीदारी में कमी होना

भारतवर्ष में मधुमक्खियों की प्रजातियाँ

भारतवर्ष में मधुमक्खियों की पांच प्रजातियाँ मुख्यरूप से शहद उत्पादन का कार्य करती हैं जिनमें एपिस डोरसाटा (रॉक बी जंगली मधुमक्खी), एपिस सेराना इंडिका (भारतीय स्वदेशी मधुमक्खी), एपिस फ्लोरिआ (बौना मधुमक्खी) , एपिस मेलिफेरा (यूरोपीय या बिदेशी मधुमक्खी) और टेट्रागोनुला इरीडिपनिस (डैमर या स्टिंगलेस मधुमक्खी) । उपरोक्त पांच प्रकार की मधुमक्खी की प्रजातियों में से केवल एपिस सेराना इंडिका (भारतीय छत्ता मधुमक्खी) और एपिस मेलिफेरा (यूरोपीय या विदेशी मधुमक्खी) को ही व्यापक स्तर पर पारम्परिक अथवा ब्यावसायिक मधुमक्खी पालन एवं प्रबंधन हेतु उपयोग में लाया जा रहा हैं क्योकि केवल इन 02 प्रजातियों को ही आवश्यकता के अनुसार विभिन्न प्रकार के मधु छत्तों का उपयोग कर मौनपालन के लिये इस्तेमाल किया जा सकता हैं। भारतवर्ष के अधिकांश श्रेत्रों में सदियों से देशी मधुमक्खी पारंपरिक मधुमक्खी पालन में उपयोग हेतु लायी जा रही हैं। प्रारम्भिक दौर में देशी मधुक्खियों को सीमित संसाधनों के अनुसार केवल पारंपरिक मौनघरों खोखला तनामौनघर (लाग हाइव) एवं दीवार मौनघर (वाल हाइव) को ही इस कार्य के लिये उपयोग में लाया जाता था। कालान्तर में आधुनिक मौनघर (फ्रेमयुक्त डिब्बा मौनघर, फ्रेम युक्त मृदा मौनघर, सुपर चौम्बर मौनघर आदि) का उपयोग भी अनेक पर्वतीय मधुमक्खी पालकों द्वारा संसाधनों के अनुसार मौनपालन के लिये इस्तेमाल किया जा रहा है। देशी मधुमक्खी की तुलना में एपिस मेलिफेरा (यूरोपीय या बिदेशी मधुमक्खी) को केवल फ्रेमयुक्त डिब्बा मौनघर सुपर चौम्बर मौनघर में ही मधुमक्खी पालन हेतु उपयोग में लाया जा सकता हैं। एपिस डोरसाटा मधुमक्खी (जंगली मधुमक्खी) का अत्यधिक आक्रामक स्वभाव होने के कारण इनको आवश्यकता के अनुसार ब्यवसायिक मधुपालन में उपयोग नहीं किया जा सकता है, अत्यधिक प्रयासों के बावजूद भी इस प्रजाति को ब्यवस्थित रूप से पालन हेतु उपयोग नहीं किया जा सका हैं। इसके अलावा दो अन्य प्रजातियाँ एपिस फ्लोरिआ (बौना मधुमक्खी), टेट्रागोनुला इरीडिपनिस (डैमरस्टिंगलेस मधुमक्खी) का जंगली, खानाबदोश स्वभाव एवं कम मधु–उत्पादकता के कारण ब्यवसायिक तौर पर मधुमक्खी पालन हेतु उपयोग में नहीं लाया जा रहा हैं। हालांकि देश के कुछ सीमित श्रेत्रों में डैमरस्टिंगलेस मधुमक्खी का भी मधुमक्खी पालन में उपयोग किया जा रहा है पर इस प्रजाति की मधु उत्पादन क्षमता कम है लेकिन समाज में इस वात की भी चर्चा रहती हैं कि इस प्रजाति की मधुमक्खी का शहद अन्य मधुमक्खी प्रजाति की तुलना अत्यधिक उपयोगी एवं मूल्यवान होता हैं।

मधुमक्खी पालन एवं प्रबंधन हेतु आवश्यक जानकारीः

मधुमक्खी पालन सामान्यतया मधुमक्खियों की कालोनियों के संख्या के आधार पर व्यक्तिगत उपयोग, लघु स्तरीय, ब्यापक एवं व्यावसायिक स्तर में विभाजित किया जा सकता हैं और प्रत्येक स्तर पर क्षेत्र विशेष की जलवायु के आधार पर मौन पालन हेतु मौन प्रजाति स्वदेशी मधुमक्खी (ऐपिस सेराना) अथवा विदेशी मधुमक्खी (ऐपिस मेलिफेरा) अलग अलग हो सकती है। क्योंकि दोनों लघु एवं व्यावसायिक स्तर पर मधुमक्खी पालन प्रारम्भ करने हेतु भिन्न–भिन्न जलवायु, भोगोलिक श्रेत्रों एवं संसाधनों की आवश्यकता होती है। उक्त को मध्यनजर रखते हुऐ निम्न बिंदुओं का विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिएः

1. मधुमक्खी पालन हेतु मौन प्रजाति का चयन मधुमक्खी पालन हेतु चयनित क्षेत्र की जलवायु को ध्यान में रखकर करना चाहिये।

2. पहाड़ी ठण्डे जलवायु क्षेत्र जहां प्रत्येक ऋतु में तापमान में अत्यधिक उतार–चड़ाव रहता है, मौन पालन हेतु स्वदेशी प्रजाति (ऐपिस सेराना) की मधुमक्खी सबसे उपयोगी हैं, क्योंकि स्वदेशी मधुमक्खी सदियों से पर्वतीय श्रेत्रों के जलवायु परिवर्तन के प्रभाव हेतु अनुकूलित हैं।

3. स्वदेशी मधुमक्खी पालन सिमित संसाधनों के अंतर्गत आसानी से प्रारम्भ किया जा सकता हैं।

4. चयनित क्षेत्र में साल के प्रत्येक ऋतु अनुसार उपलब्ध मधुमक्खी उपयोगी पुष्पीय पादपो का प्रारम्भिक स्तर अध्ययन।

5. चयनित क्षेत्र में कृषि बागबानी भूमि क्षेत्र का स्तर एवं बागबानी में उपयोग होने वाले कीट रसायनों से मौन गृह की सुरक्षा।

6. उस क्षेत्र विशेष के आस पास स्वच्छ जल की उपलब्धता का स्तर।

7. स्वदेशी मधुमक्खी पालन को व्यावसायिक स्तर पर अपनाने हेतु पर्वतीय सामान्य आय वाले कृषक/ मधुमक्खी पालक भी सरकारी परियोजनाओं से लाभ के साथ–साथ स्वयं के परिश्रम से बिना अतिरिक्त संसाधनों से आसानी से कर सकते हैं।

8. पर्वतीय श्रेत्रों में व्यावसायिक स्तर पर विदेशी मधुमक्खी (ऐपिस मेलिफेरा) के पालन हेतु अतिरिक्त संसाधनों, जनधन एवं देख रेख की आवश्यकता होती हैं। खासतौर विदेशी मधुमक्खी के लिए शीतकाल में पर्वतीय श्रेत्रों के अत्यधिक ठंड के वातावरण हेतु अनुकूलित नहीं होती हैं जिस कारण प्रत्येक वर्ष इनकी मधुमक्खी कालोनियों को माह अक्तूबर से अप्रैल तक मैदानी श्रेत्रों की गर्म जलवायु वाले क्षेत्रों की तरफ स्थान्तरित करने की आवश्यकता पड़ती हैं। मौसम परिवर्तन के समय प्रत्येक सीमांत मधुमक्खी पालक/कृषक विदेशी मधुमक्खियों को सीमित संसाधनों के कारण पहाड़ी श्रेत्र से मैदानी श्रेत्रों की ओर स्थान्तरित करने में असमर्थ हो जाता हैं।

पर्वतीय श्रेत्रों में मधुमक्खी पालन हेतु सर्वोत्तम प्रजाति के चयन हेतु संबंधित प्रजाति की शहद उत्पादन की क्षमता को प्रमुखता दी जाती हैं लेकिन शहद उत्पादन के अलावा भी पर्वतीय श्रेत्रों में मधुमक्खी एवं मधुमक्खी पालकों को मधुमक्खी पालन एवं प्रबंधन में विविध प्रकार की चुनोतियों का सामना करना पड़ता हैं। मधुमक्खी पालन की सभी संभावनाओं को मध्यनजर रखते हुए पर्वतीय श्रेत्रों हेतु स्वदेशी एवं विदेशी मधुमक्खी पालन संबंधी एक तुलनात्मक अध्ययन तालिका 01 में प्रस्तुत किया गया हैं। तुलनात्मक अध्ययन के विविध आयामों से यह स्पष्ट हैं कि पर्वतीय श्रेत्रों में स्थिर मधुमक्खी पालन हेतु देशी मधुमक्खी सबसे उपयोगी हैं।

पर्वतीय श्रेत्रों में देशी मधुमक्खी पालन प्रबंधन की सफलता हेतु एकीकृत प्रयासः

अधिकांश पर्वतीय श्रेत्रों में वर्तमान समय में भी देशी मधुमक्खी

तालिका 01: पर्वतीय श्रेत्रें हेतु स्वदेशी एवं विदेशी मधुमक्खी पालन संबंधी एक तुलनात्मक अध्यन

तुलनात्मक अध्यन हेतु मापदंड	मधुमक्खी प्रजाति	
	स्वदेशी मधुमक्खी (ऐपिस सेराना)	विदेशी मधुमक्खी (ऐपिस मेलिफेरा)
प्रारंभिक निवेश	बहुत कम	उच्च
मधुमक्खी पालन संबंधी जोखिम	कम	अत्यधिक
स्थिर मधुमक्खी पालन की क्षमता	अत्यधिक उपयुक्त	उपयुक्त नहीं
मधुमक्खी पालन का पैमाना (वित्तीय संसाधन)	छोटे पैमाने पर संचालित होने पर भी लाभदाय. क। यह दूर दराज के पर्वतीय क्षेत्रें में काम करने वाले गरीब मधुमक्खी पालकों के लिए सबसे उपयुक्त है	बड़े पैमाने पर संचालित होने पर ही लाभदायक। सुलभ क्षेत्रों के संभ्रांत व्यावसा. यिक किसानों के लिए यह सबसे उपयुक्त है
जल्दी फूलने वाली पर्वतीय फसलों का परागण	अधिक कुशल	मौसम के शुरुआती दिनों में मधुमक्खी कालोनी की ताकत कम होती है, परागण सेवा हेतु कम उपयुक्त
मधुमक्खी पालन संबंधी स्वदेशी ज्ञान	मौजूद	शून्य नगण्य

माईट और अन्य मधुमक्खी के शिकारियों के लिए संवेदनशीलता	प्रतिरोधी	कमजोर
पारिस्थितिकी सेवाएं	अधिक	कम

तालिका श्रोतः जोशी और अन्य 2002

का पालन केवल पारम्परिक विधियों से किया जा रहा हैं लेकिन पर्वतीय मधुमक्खी पालकों को वर्तमान समय एवं बाजार की माँग को ध्यान में रखते हुए आधुनिक मधुमक्खी पालन प्रबंधन का प्रशिक्षण प्राप्त करके एकीकृत (पारम्परिक एवं आधुनिक) रूप से देशी मधुमक्खी का पालन एवं प्रबंधन सुनिश्चित करना चाहिए। जहां एक ओर पारंपरिक मौन गृहों जैसेः वाल हाइव (दीवार मौन गृह) एवं लौग हाइव (लकड़ी का खोखला तना मौन गृह) को स्वभावतः देशी मधुमक्खियाँ निवास हेतु अत्यधिक प्रसंद करती हैं और वातावरण के अनुकूल होने के कारण भी इन पारम्परिक मौन गृहों को निवास हेतु देशी मधुमक्खियाँ अत्यधिक पसंद करती हैं। पारंपरिक मौन गृहों में मधुमक्खियों की आबादी में भी समयानुसार आशातीत वृद्धि के साथ –साथ रानी मधुमक्खी की संख्या भी एक से अधिक हो जाती हैं। एक मौनगृह में एक से अधिक रानी मधुमक्खियाँ अधिक समयान्तराल तक साथ –साथ नहीं रहती हैं इस प्रकार की स्थिति में मधुमक्खियाँ वंश में वृद्धि होने के उपरान्त नवीन रानी मधुमक्खी स्वाभाविक रूप से मौनघर की कुछ मौनवंश के साथ मूल मौनघर से विभाजित होकर नया घर की तलाश में समूह (स्वारमिंग) में मौनघर से वाहर आ जाते हैं इस स्थिति में मौन पालक को विभाजित मधुमक्खियों के समूह को पकड़कर लकड़ी के फ्रेमयुक्त डब्बा मधुमक्खी घर में स्थान्तरित कर देना चाहिये इस प्रक्रिया से एक ही वर्ष में एक पारंपरिक मधुमक्खी गृह से 6–8 अतिरिक्त फ्रेमयुक्त आधुनिक मधुमक्खी गृह भी निर्मित हो जाते हैं। पारंपरिक मौनगृहों में मधुमक्खी पालन प्रबंधन में कई प्रकार की समस्याओं का देशी मधुमक्खी पालक को निरंतर सामना करना पड़ता हैं इनमें प्रमुख रूप से निम्नलिखित हैंः (1) पारम्परिक मौन घरों में देशी मधुमक्खियों की निरंतर देख रेख एवं सफाई की समस्या रहती है, (2) समय समय पर साफ सफाई के अभाव के फलस्वरूप पारंपरिक मौनगृहों में वैक्स मोथ (मोमी कीड़ा) का प्रकोप अत्यधिक देखा गया हैं जो मोम छत्ते, शहद, मधुमक्खी के नवीन वंश को अत्यधिक प्रभावित करता हैं, (3). देशी मधुमक्खी के घर में अत्यधिक मोमी कीड़े के प्रकोप होने पर मधुमक्खी वंश पूर्णतया नष्ठ भी हो जाता हैं अन्यथा मधुमक्खी वंश मोमी कीड़े के संक्रमित मौनघर को छोड़कर अन्यत्र सुरक्षित मौनघर के तलाश में चले जाते हैं, (4). पारंपरिक मौनगृहों से मधु निष्काशन के समय सम्पूर्ण देशी मधुमक्खी के छत्ते को काटकर मधु का निस्तारण किया जाता हैं इस प्रकार से शहद निस्तारण की प्रक्रिया में मधुमक्खी का सम्पूर्ण मोमछत्ता, नूतन मौनवंश (अंडा, लार्वा, शिशु) पूर्णतया नष्ट हो जाता हैं जिस कारन मधुमक्खी की आबादी को नुकसान के साथ साथ पुनः नवीन छत्ते का निर्माण करना पड़ता हैं (5). देशी मधुमक्खी के पारंपरिक गृहों में मौनवंश की संख्या में वृद्धि होने पर कुछ मौनवंश का विभाजन कर नया मौनवंश निर्माण की प्रक्रिया का कार्य भी सामन्यतया संभव नहीं होता हैं। देशी मौन वंश का एकीकृत प्रयासों (पारंपरिक एवं आधुनिक) को अपनाकर मधुमक्खी पालन प्रबंधन में पारंपरिक देशी मधुमक्खी पालक को मधुमक्खी संरक्षण, गुणवत्ता युक्त शहद उत्पादन, मौनवंश की वृद्धि, मधुमक्खी कालोनी विस्तार, मौनवंश का परागण सेवा में उपयोग, मधुमक्खी पालन के आधुनिक उपकरणों का उपयोग एवं मधुमक्खी वंश का व्यापार भी सुनिश्चित हो जाता हैं।

मधुमक्खी पालन प्रबंधन में मुख्य सावधानियांः

देशी अथवा विदेशी प्रजाति के मधुमक्खी पालन प्रबंधन करने हेतु अनेकानेक सावधानियों का पालन मधुमक्खी पालक को यथोचित सफलता प्राप्त करने हेतु पालन करना आवश्यक हो जाता हैं। मधुमक्खी पालक को मधुमक्खियों से संबंधित निम्नलिखित पांच बातों का सदैव ध्यान रखना चाहिए क्योंकि इसमें सम्पूर्ण मधुमक्खी पालन की सफलता का राज निहित हैं :

1. भूख प्यास से स्वतंत्रता (भोजन और पानी की व्यवस्था)
2. असुविधा से स्वतंत्रता (आश्रय)
3. दर्द, चोट और बीमारी से स्वतंत्रा (चिकित्सा देखभाल)
4. सामान्य व्यवहार करने की आजादी (अभ्यास)
5. भय और परेशानी से स्वतंत्रता

उपरोक्त वर्णित सावधानियों के साथ–साथ मधुमक्खियों के संरक्षण में सहायक मौनपुष्पीय पादपों का संरक्षण अत्यंत आवश्यक हैं क्योकि मधुमक्खियाँ मौनवंशीय पुष्पों से पराग एवं मधुरस ग्रहण करने के उपरांत ही अपना भोजन एवं शहद निर्माण का कार्य सुनिश्चित करती हैं। कुल्लू घाटी में हि.श्रे. के. के द्वारा विभिन्न मधुमक्खी पालन प्रबंधन संबंधी प्रशिक्षण कार्यक्रमों के दौरान (ग्रामीण शहरी) देशी मधुमक्खी पालकों को बहु उपयोगी मधुपुष्पीय पौधों के संरक्षण की उपयोगिता, देशी मधुमक्खी हेतु चिह्नित पसंदीदा मधुपुष्पीय पौधों की जानकारी एवं वृक्षारोपण हेतु इस प्रकार क पौधों का वृहद रूप से वितरण भी संपन्न किया गया हैं। विशेष रूप से मधुपुष्पीय

पौधों (शाक, लता, झाड़ी, वृक्ष) के प्रजाति समूह में बहु उपयोगी, सजावटी, चारा, फल, फूल, तिलहन, दलहन, मसाला, औषधि आदि– आदि का विस्तारपूर्वक क्षेत्र के काश्तकार एवं मधुमक्खी पालकों के साथ विस्तारपूर्वक जानकारी साझा की गयी हैं।

देशी मधुमक्खी पालन से जैव–विविधता संरक्षण एवं सतत कृषि विकासः

मधुमक्खी एवं अन्य सहायक कीट परागणकर्ताओं को प्रकृति के खाद्यान्न सुरक्षा प्रबंधक के रूप में भी जाना जाता है। स्थलीय पारिस्थितिक तंत्र में मधुमक्खी और अन्य सहायक कीट परागणकर्ताओं को उनके द्वारा प्रकृति में प्रदान की जाने वाली सबसे महत्पूर्ण परागण रूपी पारिस्थितिक सेवाएं प्रदान करने के लिए जाना जाता है। मधुमक्खियों को कृषि एवं वन्य पारिस्थितिकी तंत्रों को आपस में जोड़ने वाली कड़ी के रूप में भी जाना जाता है क्योंकि मधुमक्खियाँ दोनों पारिस्थितिकी तंत्रों में पुष्पीय पादपो में परागण की प्रक्रिया को सुनिश्चित करने के फलस्वरूप फूल से फल, फल से बीज निर्माण तक की प्रकिया में सहायक होती हैं। हिमालयी क्षेत्रों की जलवायु को मध्यनजर रखते हुये इस क्षेत्र के वातावरण के साथ सामंजस्य स्थापित करके देशी मधुमक्खियों को शहद उत्पादन के साथ –साथ सबसे सफल परागणकर्ताओं के रूप में स्वीकारा गया हैं। मधुमक्खियों को जैव–विविधता संकेतक के साथ– साथ प्रकृति एवं पर्यावरण संरक्षण के लिए महत्वपूर्ण घटक माना जाता है। अधिकांशतः पुष्पीय पादपों जो कि जंगली एवं कृषि परितंत्र का प्रतिनिधित्व करती हैं उनमें मधुमक्खी एवं अन्य परागणकर्ताओं द्वारा उचित समय पर सफल परागण की क्रिया संपन्न होने के फलस्वरूप ही फूल से फल, फल से बीज एवं बीज से नई पौध का निर्माण सुनिश्चित होता हैं, जिसके फलस्वरूप पोधों के जीवन चक्र को एक पीड़ी से दूसरी नई पीड़ी के विकास का सृजन होता हैं। जैव–विविधता संरक्षण हेतु परागण रूपी पारिस्थितिकी सेवा एवं परागण क्रिया को संपन्न करने वाले कारकों का समेकित प्रबंधन सबसे महत्वपूर्ण प्रक्रिया हैं। परागगणकर्ताओं के सतत योगदान से खासतौर कृषि परितंत्र मे फल, सब्जी, मेवे, तिलहन, दालें, पशु चारा, प्राकृतिक रेशें, औषधीय पादपों ओर अन्य बहुउपयोगी फसलों को परागण सेवा प्रदान करके, फल एवं बीज निर्माण करके विभिन्न शीतोष्ण एव सम शीतोष्ण कृषि उपजों का आशातित उत्पादन सुनिश्चित करने के साथ –साथ सतत कृषि विकास, आजीविका प्रबंधन एवं खाद्यान्न सुरक्षा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। सफलतापूर्वक संपन्न परागण की क्रिया के फलस्वरूप ही फल, सब्जी, मेवे, मसाले, तिलहन, औषधीय एवं अन्य बहु उपयोगी फसलों का गुणवत्ता युक्त उत्पादन सुनिश्चित होता है, जिससे उत्पादकों को उत्पाद की आशातीत कीमत मिलती है, जिस के फलस्वरूप कृषि आधारित ग्रामीण आजीविका का सतत विकास सुनिश्चित होता हैं। वन्य परितंत्र में से भी बहुमूल्य संसाधनों जैसे बहु उपयोगी वन्य खाद्य पदार्थ, शहद और मधुमक्खी सम्बंधित अन्य उत्पाद, ईधन, मवेशियों हेतु चारा, सुगन्धित एवं औषधीय पादप, इमारती लकड़ी इत्यादि का उत्पादन भी अधिकांशः परागण एवं परागणकर्ताओ के सहयोग से ही संभव होता हैं, जिसके फलस्वरूप अनेक ग्रामीण, वनवासी एवं आदिवासी समुदायों के जीविकोपार्जन के साथ –साथ जैव विविधता संरक्षण तथा रखरखाव क्रियाओं से सम्पूर्ण जीवधारियों हेतु प्राण रक्षक वायु के रूप में आक्सीजन के निर्माण में सहायक भी होता हैं। हिमालयी वन्य क्षेत्र में भी

पुष्पीय पादपों में देशी मधुमक्खियाँ परागण की प्रक्रिया को सुनिश्चित कर वन्य क्षेत्र की सघनता बनाये रखने में अत्यंत सहायक है जिसके फलस्वरूप क्षेत्र में पारिस्थितिक संतुलन की प्रक्रिया भी सुनिश्चित रहती हैं।

पर्वतीय क्षेत्रों हेतु देशी मधुमक्खी पालन प्रबंधन एक आजीविका विकल्प (कुल्लू घाटी, हिमाचल प्रदेश की एक सफलता की कहानी):

मधुमक्खी पालन एक ऐसा कृषि आधारित उद्योग हैं जिसमें कम समय व कम लागत में अधिक आमदनी प्राप्त होने लगती हैं। खासतौर पर पर्वतीय क्षेत्रों (पहाड़ी राज्यों) में मधुमक्खी पालन कोई भी व्यक्ति (महिला, पुरुष, युवा, वृद्ध) अपनी शारीरिक शक्ति के अनुसार कृषिकरण, दैनिक घरेलू कार्यो के साथ–साथ एकीकृत तकनीकों (पारंपरिक/ आधुनिक) को अपनाकर देशी मधुमक्खी पालन प्रबंधन का कार्य कर सकता हैं। मधुमक्खी पालन से जहाँ एक ओर मधुमक्खी पालक को आजीविका उपार्जन हेतु विभिन्न प्रत्यक्ष लाभ होते हैं वही अप्रत्यश लाभों से समस्त मानव जाति के साथ साथ पारिस्थितिक तंत्र के विभिन्न घटकों के संतुलन को वनाये रखने में भी सहायक सिद्ध होता हैं। मधुमक्खी पालन से सम्बंधित प्रत्यक्ष लाभों मे मधु उत्पादन, मोम, बहुमूल्य एवं अत्यंत पोष्टिक पदार्थ जैसे रायल जेली, मौन डंक विष, प्रोपोलिश, मौन वंश व्यापार, मौन पालन हेतु उपयोगी सहायक सामग्री (काष्ठ मौन घर, मौन फ्रेम एवं मौन पालन सम्बन्धी उपकरण इत्यादि) इसके अलावा मौन पालन हेतु उपयोगी आधुनिक उपकरणों का व्यापार आदि–आदि। पारिस्थितिक तंत्र की गुणवत्ता प्रभावित होने के परिणाम स्वरूप देशी मधुमक्खी एवं सहायक कीट परागणकर्ताओं के प्राकृतिक आवास, भोज्य पुष्पीय पादप एवं समयानुकूल पुष्पित होने की प्रक्रिया प्रभावित होने के कारण वैश्विक स्तर पर मधुमक्खी एवं सहायक कीट परागणकर्ताओं की आबादी अत्यधिक प्रभावित हो रही हैं। मधुमक्खी सहित कीट परागणकर्ताओं की आबादी में ह्रास सीधे तौर पर मधु, फसल उत्पादन एवं आजीविका को प्रभावित करता हैं।

हिमाचल प्रदेश सहित सम्पूर्ण भारतीय हिमालयी श्रेत्र में मधुमक्खी एवं सहायक कीट परागणकर्ताओं के महत्व को मध्य नजर रखते हुये कुल्लू घाटी हिमाचल प्रदेश में संस्थान ने क्षेत्र के विभिन्न हितधारकों को देशी मधुमक्खी पालन प्रबंधन के विभिन्न पहलुओं जैसे (1). देशी मधुमक्खी पालन प्रबंधन से परागण प्रबंधन, कृषि विकास, फसल उत्पादन एवं आजीविका विकास, (2) मौन पुष्पीय–पादपों की पहचान एवं संरक्षण से मधुमक्खी पालन प्रथाओं का निर्वाह (3) आधुनिक उपकरणों एवं सहायक सामग्रियों के उपयोग से सुरक्षित मधुमक्खी पालन (4) सफल परागण प्रबंधन हेतु देशी मधुमक्खी के शत्रु और विमारियों की पहचान एवं निराकरण आदि पर व्यापक प्रशिक्षण प्रदान करने के साथ –साथ मधुमक्खियों के संरक्षण हेतु जागरूक किया हैं।

संस्थान के देशी मधुमक्खियों से संबधित पालन प्रशिक्षण

तालिका 2: कुल्लू घाटी, हिमाचल प्रदेश में देशी मधुमक्खी पालन प्रबंधन के विभन्न श्रोतों से अर्जित आय का विवरण

क्रम संख्या	देशी मधुमक्खी के विमिन्न श्रोतों से अर्जित आय विवरण	अर्जित आय (रुपया)
1.	मधु ब्यापार से प्राप्त आयः	1,15,000/-मात्र
2.	मधुमक्खी निर्मित मोम ब्यापार से प्राप्त आय	2,000/-मात्र
3.	सक्रिय फ्रेम युक्त डब्बा सहित मौनवंश ब्यापार से प्राप्त आय	4,80,000/-मात्र
4.	केवल मौनवंश के फ्रेमयुक्त सक्रिय छत्ता के ब्यापार से प्राप्त आय	30,000/-मात्र
5.	मौन पालन सम्बंधित उपयोगी उपकरण ब्यापार से प्राप्त आय (टोकरी, फ्रेम साहित डिब्बा मौनघर, केवल फ्रेम, टोपी, दस्ताने, मधु निष्कासन मशीन व अन्य सहयोगी उपकरण)	1,00,000/-मात्र
6.	मौनवंश के परागण सेवा से प्राप्त किराये से अर्जित आय	65,000/-मात्र
7.	अन्य सहयोगी मौन पालन सम्बंधित कार्यो से अर्जित आय (मधुमक्खी पालन प्रबंधन प्रक्षिक्षण, घुमंतू मौन वंश को पकड़ने, मौन छत्ते से शहद निष्कासन सेवा एवं अन्य मौनपालन सम्बंधित सेवाये प्रदान करने आदि –आदि से प्राप्त आय)	50,000/-मात्र
कुल व्यापार (1–7):		8,42,000/-मात्र
शुद्ध आयः		**700,000/- मात्र**

कार्यक्रमों में भागीदारी सुनिश्चित करने के उपरांत श्रेत्रवासियों ने पारम्परिक देशी मधुमक्खी पालन प्रबंधन के साथ– साथ आधुनिक मौनपालन में आशातीत सफलता प्राप्त करके देशी मधुमक्खियों से मधु उत्पादन, मौन वंश व्यापार, मौन पालन सेवा, परागण प्रबंधन से उन्नत कृषि उत्पादन एवं सतत आजीविका सुनिश्चित करने में अग्रणी भूमिका निभाई हैं। संस्थान के हिमाचल क्षेत्रीय केन्द्र, कुल्लू, हिमाचल प्रदेश के विभिन्न देशी मधुमक्खी पालन प्रबंधन कार्यक्रमों से विगत 7–8 वर्षो से लगातार जुड़े रहे देशी मधुमक्खी पालक श्री दीनदयाल, संस्थापक, दीनदयाल स्वदेशी बी फार्म, ग्राम एवं पोस्ट कराडसु, कुल्लू, हि.प्र. द्वारा वर्ष 2021 की जनवरी से जुलाई के मध्य मौन पालन व्यवसाय से सम्बंधित विभिन्न स्रोतों से प्राप्त आय का विवरण तालिका 2 में दिया गया हैं। संस्थान द्वारा आयोजित देशी मधुमक्खी पालन प्रबंधन से सतत आजीविका विकास संबंधी कार्यक्रमों का पूर्णतया लाभ उठाकर आज श्री दीनदयाल सम्पूर्ण श्रेत्र में विभिन्न संस्थाओं द्वारा आयोजित देशी मधुमक्खी पालन प्रबंधन संबंधी प्रशिक्षण कार्यक्रमों में एक प्रमुख प्रशिक्षण दाता के रूप में आमंत्रित किये जाते हैं। वर्ष 2021 में हि.श्रे.के. के देशी मधुमक्खी के संबंधित विशेषज्ञों की सलाह से दीनदयाल मधुमक्खी फार्म एक सम्पूर्ण सुविधाओं से युक्त मधुमक्खी प्रशिक्षण केंद्र की शुरुआत की हैं अब हिमाचल प्रदेश के कई संस्थान यहाँ पर क्षेत्र के संबंधित प्रतिभातियों हेतु देशी मधुमक्खी पालन प्रबंधन संबंधी प्रशिक्षण का आयोजन भी करते हैं। यहाँ मधुमक्खी से संबंधित आजीविका सृजन का सम्पूर्ण हिमाचल प्रदेश में एक नया तरीका विकसित किया गया हैं। दीनदयाल मधुमक्खी फार्म नये मौन पालकों को देशी मधुमक्खी पालन से संबंधित मधुमक्खी सहित अन्य सभी सहायक सामग्री क्रय करने वाले की आवश्यकतानुसार उपलब्ध कराता हैं। इसके आलावा श्री दीनदयाल के द्वारा नये देशी मधुमक्खी पालक को समय समय पर मधुमक्खियों के पालन एवं रखरखाव में आने वाली परेशानी के निराकरण हेतु पूर्ण जानकारी साझा की जाती हैं। वर्तमान में दीनदयाल मधुमक्खी फार्म द्वारा उत्पादित देशी मधुमक्खी के शहद को मुंबई के व्यापारी सीधे उनके घर आकर क्रय कर रहे है और इनके देशी मधुमक्खी फार्म के शहद की माँग में प्रति वर्ष बृद्धी हो रही है। संस्थान के हिमाचल क्षेत्रीय केंद्र के सहयोग से उत्तराखण्ड के मौनपालक भी समय समय पर इनके मधुमक्खी फार्म पर प्रशिक्षण हेतु कुल्लू आ रहे है। इनकी सफलता से प्रभावित होकर कुल्लू सहित प्रदेश के अन्य जिलों के इच्छुक प्रतिनिधि भी देशी मधुमक्खी पालन प्रबंधन को अपनाकर सतत आजीविका विकास की राह में प्रयत्नशील हैं।

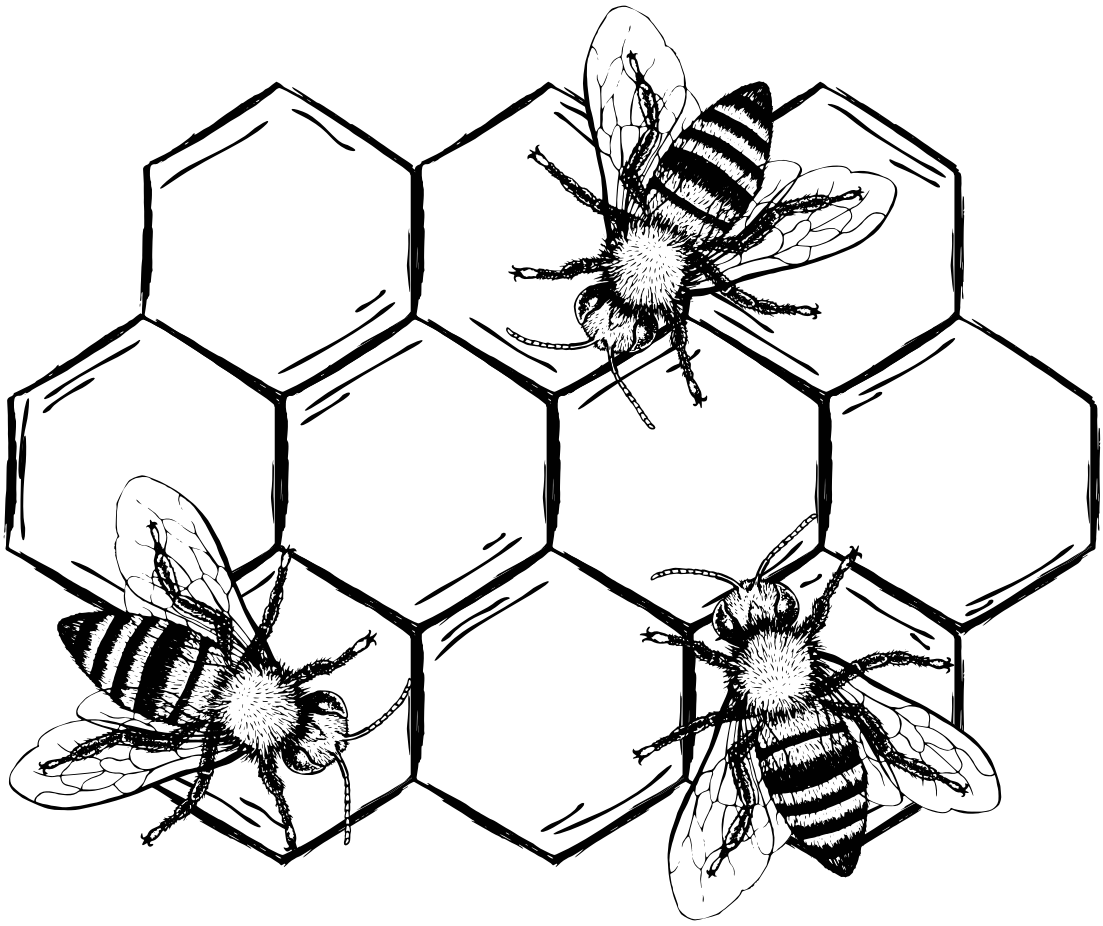

राजभाषा कार्यान्वयन समिति द्वारा वर्ष 2022 में आयोजित कार्यशालाएं सूक्ष्म परिचय

महेश चन्द्र सती तथा सुबोध ऐरी,

गो. ब. प. राष्ट्रीय हिमालयी पर्यावरण संस्थान, कोसी-कटारमल, अल्मोंड़ा, उत्तराखंड

संस्थान की राजभाषा कार्यान्वयन समिति द्वारा वर्ष 2022 में रा. का. समिति की प्रथम कार्यशाला का आयोजन रा. का. समिति की सदस्या डा0 वसुधा अग्निहोत्री द्वारा दिनांक 22 मार्च 2022 को पानी का महत्त्व और भूजल संरक्षण विषय पर किया गया। जिसमें राजकीय इण्टर कालेज, कठपुड़िया के लगभग 100 बच्चों को पानी के पुनर्जीवन पुनरुपयोग एवं उसकी गुणवत्ता की जाँच तथा विश्व जल दिवस के बारे में और पानी की अम्लीयता, टीडीएस, पानी में पाये जाने वाले आयन्स की जाँच और उसके लिए उपयोग किये जाने वाले उपकरणों से सम्बन्धित विस्तृत जानकारी साझा की। कार्यशाला के अगले सत्र में जूनियर और सीनियर स्तर के बच्चों के मध्य कला प्रतियोगिता का भी आयोजन किया गया जिसमें विजेता बच्चों को पुरस्कृत भी किया गया।

दूसरी तिमाही कार्यशाला का आयोजन डा0 सुबोध ऐरी, सदस्य रा. का. समिति द्वारा दिनांक 22 मई 2022 को "कृषि एवं वन पारिस्थितिकी तंत्र में अतिक्रमणकारी प्रजातियों का प्रबन्धन" विषय पर किया गया। जिसमें धारचूला ब्लाक के 6 विद्यालयों के लगभग 65 विद्यार्थियों ने प्रतिभाग किया। जिसमें पर्वतीय क्षेत्रों में अतिक्रमणकारी प्रजातियों के बढ़ने से यहाँ की स्थानीय जैव विविधता पर पड़ने वाले विपरीत प्रभाव तथा अतिक्रमणकारी प्रजातियों के उन्मूलन की विभिन्न विधियों पर प्रकाश डाला गया। उन्होंने उत्तराखण्ड की अब तक की कुल प्रलेखित अतिक्रमणकारी प्रजातियों की सूची और क्षेत्र की जनता को इसे अपनी आजीविका हेतु एक विकल्प के रूप में प्रयोग करने की बात कही।

तीसरी तिमाही हिन्दी कार्यशाला का आयोजन डा. आशीष पाण्डेय, सदस्य रा. का. समिति द्वारा दिनांक 30 सितम्बर 2022 को किया गया। कार्यक्रम का मुख्य उददेश्य संस्थान के शोधार्थियों के हिन्दी में कार्य करने एवं लोकल बोलचाल में शुद्ध हिन्दी के प्रयोग को बढ़ावा देना था। इस कार्यक्रम के मुख्य वक्ता के रूप में सोबन सिंह जीना विश्वविद्यालय से हिन्दी

विभाग के प्रमुख एवं शोध एवं प्रसार निदेशक प्रो. जे.एस. विष्ट जी ने हिन्दी के प्रचार एवं प्रसार हेतु शोध की भागीदारी पर व्याख्यान दिया उन्होनें सुझाया कि कैसे हम स्थानिक हिन्दी नामों का शोध कार्य में प्रयोग कर हिन्दी भाषा को प्रचारित एवं प्रसारित कर सकते है। कार्यक्रम में कुल 35 प्रतिभागियों ने प्रतिभाग किया।

समिति की चौथी तिमाही कार्यशाला का आयोजन श्री महेश चन्द्र सती, सदस्य रा. का. समिति द्वारा दिनांक 30 दिसम्बर 2022 को राजभाषा हिन्दी का अधिक से अधिक प्रयोग कैसे करें विषय पर किया गया। उन्होंने राजभाषा अधिनियम 1963 यथा संशोधित 1967 की धारा 3(3) में उल्लिखित आदेशों, राजभाषा हिन्दी की उत्पति, हिन्दी दिवस तथा विश्व हिन्दी दिवस को मनाये जाने के कारण, राजभाषा नियम, राजभाषा पुरष्कार, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली, विभिन्न क्षेत्रों के बीच पत्रचार, हिन्दी वर्तनी, कार्यालयी हिन्दी, कायालयो

में उपयोग होने वाले विभिन्न पत्तों, कार्यालय आदेश, परिपत्र, टिप्पणी और कम्प्यूटर पर यूनिकोड का प्रयोग की विस्तृत जानकारी भी दी, तथा राजभाषा विभाग द्वारा जारी वार्षिक कैलेंडर और इसके प्रयोग से अवगत कराया।

राजभाषा हिन्दी पखवाड़ा के अर्न्तगत पुरस्कृत कविताऐं

प्रथम पुरस्कार

आज खुश तो बहुत होगे तुम...

आज खुश तो बहुत होगे तुम.....

जीवन की ठोर में, वातावरण के शोर में, स्वार्थ के घनघोर में, टूटती डोर में

अनायास विचार आया, मन बनाया

क्यों ना अपने नए मेहमान से मिला जाये

उससे उसका हाल पूछा जाये

मैं बात कर रहा हूँ अपनी विलुप्त धरोवर पर

खो चुके उस अमृत सरोवर पर

बात कर रहा हूँ उस चीते की जो था तो अपना पर हो गया पराया

ना जाने क्यों उसे डराया, मारा और भगाया

आज फिर से आया वो मेहमान बन कर, अपने अस्तित्व की पहचान बन कर

मैं गया उससे मिलने, एक दोस्त और एक मेजबान बन कर

देखा तो पाया वो बैठा है शांत हो कर, थोड़ा विचलित
पर शांत हो कर

चाहरदिवारी के पास आकर देखा तो बहुत सुन्दर था, उसके भावों में विस्मय निरंतर था

थोड़ा पास आया तो मैंने पूछा आज खुश तो बहुत होगे तुम .....

थोड़ा विस्मित हो कर मेरे पास आया, थोड़ा सकुचाया, थोड़ा घबराया

फिर बोला खुश तो बहुत होगे तुम भी

मैं कहा हाँ मैं तो खुश हूँ, मेरे पास घर है, गाड़ी है, बँगला है, बैंक बैलेंस है क्या है तुम्हारे पास

उसने कहा मेरे पास मेरे पास आशा है उमंग है

नया घर, नया आयाम और विश्वास मेरे संग है.

दूर तक जाउंगा नया घर बनाऊंगा, प्रकृति की गोद में पलूंगा

अपने अस्तित्व को नयी पहचान दूंगा

अपनी बिछुड़ी हुई धरती को नमन करता हूँ प्रणाम करता हूँ,

अपने सभी साथियों को सलाम करता हूँ,

बोला क्यों खत्म कर दिए मेरे पूर्वज, क्यों मिटा दिया मेरा आधार

संकट में ला दिया संतुलन, किया प्रकृति से खिलवाड़, और किया व्यापार

अपनी उन्नति, अपने वैभव हेतु किसने दिया तुम्हें ये अधिकार

उजाड़ दिए जंगल किया प्राणियों का संहार

बना दिए कंक्रीट के जंगल मचाया हाहाकार

दूषित हो गया जल, दूषित हो गयी वायु, दूषित हो गया संसार

मिटा दिए प्राणियों के आवास, और कर लिया विश्वास

कि तुम ही हो सर्वश्रेष्ठ, हम सबके ज्येष्ठ

पर मिला क्या तुम्हें ये करके थोड़ा आभास करो, थोड़ा समझने का प्रयास करो

विलुप होती प्रजातियाँ, कम होती जैव विविधता, बिगड़ता पर्यावरण और प्रदूषण की अधिकता

जलवायु परिवर्तन, ग्लोबल वार्मिंग ये तो सब पहले से ना था

कितना सुन्दर, कितना स्वच्छ, कितना समृद्ध अपना जग था

कम अनाज पैदावार की लाचारी

पलायन और बेरोजगारी

भुखमरी, अकाल, बीमारी

ना जाने अब किसकी है बारी

सब तुम्हारी ही खैरात है, किया सब बर्बाद है

अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है मेरे दोस्त

संभल जा, सुधर जा

मुझे तो ले आया मेहमान बना कर

पर क्या क्या लायेगा, कब तक लायेगा

तब तक जब तक कुछ भी ना बचेगा, तब तू अकेला होगा, लाचार होगा, बीमार होगा

तेरे खुद के अस्तित्व को बचाने का विचार तुझ पर सवार होगा,

मिट जायेगी ये धरती, मिट जाएगा ये संसार

तब किस काम आयेगा तेरा ये व्यापार

ईश्वर की इस देन को यूँ बर्बाद न कर

प्रकृति को मिटा कर अपना घर आबाद न कर

मैं तो खुश हूँ मुझे नया आवास मिला, कुछ करने का विश्वास मिला

कुछ कर जाउंगा, कुछ दे जाउंगा, प्रकृति की सौगात तुझे दे जाउंगा

पर तू तो खुश है दिखावटी वैभव में, घर, गाड़ी, बंगले और बैंक बैलेंस में,

अरे दोस्त असली सुख तो प्रकृति में है, इसे अपना

मेरे दोस्त बैंक बैलेंस नहीं, प्रकृति का बैलेंस बना

सतीश चन्द्र आर्य
गोविन्द वल्लभ पंत राष्ट्रीय हिमालयी पर्यावरण संस्थान,
कोसी-कटारमल, अल्मोड़ा, उत्तराखण्ड

द्वितीय पुरस्कार

"प्रकृति की पुकार"

सुन रे मानव सुल ले, यह प्रकृति की पुकार है,
विकास की अंधी दौड़ में, क्यों करता मेरा उपहास है।

हरियाली कभी निराली थी, अब तो सूखी घास है,
मानव पगलाया घूम रहा, करता प्रकृति का उपहास है।

काटे पहाड़ जंगल काटे, नदियों को भी मोड़ा मानव ने,
विश्व रचयिता ब्रहमा के, नियमों को तोड़ा मानव ने।

नित देखी नयी आपदाएं हमने, बाबा केदार का तांडव भी हमने देखा है,
कि ऑल वेदर सड़कों के नाम पर, वनों को कैसे लूटा है।

लहलहाते खेतों को भी शमशान बनाया मानव ने
नदियां सोखी, तालाब सोखे इस दानव रूपी मानव ने।

है भूल गया खाएगा क्या, और कहा से आयेगा पानी,
जब हवा भी खोजेंगी सांसे, फिर याद आयेगी सबको नानी।

भूगर्भ का जल दूषित है, जहरों से फसल प्रदूषित है,
जन्म ले रहा हर बच्चा-बच्चा, शायद इससे कुपोषित है।

जंगल में पशु भटक रहें, है आवास उजाड़ा मानव ने,
आगे बढ़ने की चाहत में, सबको पछाड़ा मानव ने।

कोयल की कूंक खो गयी, ना मोर कहीं पे नाचे हैं,
गौरैयों के घोसलें उजड़ गये, बस बचे महलों के ही ढ़ांचे है।

लेकिन मानव कितना भी आगे बढ़ जाय, रहेगा वह इंसान नही,
जब सीमाएं सारी तोड़ेगा, तो कुपित होगा इंसान ही।

विभिषिका फिर ऐसी होगी, न कुछ बच पाएगा,
सब गवा के एक दिन, मानव ही पछताएगा।।

विनोद जोशी
गोविन्द वल्लभ पंत राष्ट्रीय हिमालयी पर्यावरण संस्थान,
कोसी-कटारमल, अल्मोड़ा, उत्तराखण्ड

सांत्वना पुरस्कार

पर्यावरण पर कविता

धरती पर ऐसा कर दिखा दो, जिस पर गर्व दिखाई दे।
इतनी खुशियॉ बाटो भारत में, हर दिन पर्व दिखाई दें।।
हरे वृक्ष जो काट रहे है, उन पर सब हल्ला बोलो।
खुद भी पेड़ लगाओ इतने, धरती स्वर्ग दिखाई दे।।
धरती पर ऐसा कर दिखा दो, जिस पर गर्व दिखाई दे।

कोई मानव शिक्षा से भी, वंचित नही दिखाई दे।
धरती में कुड़ा करकट, बिखरा नहीं दिखाई दें।।
वृक्ष रोपकर पर्यावरण की, हरियाली ऐसी दिखाई दें।
कुड़ा कचरा धरती पर, कदापि नही दिखाई दें।
धरती पर ऐसा कर दिखा दो, जिस पर गर्व दिखाई दे।

हरे वृक्षों से पर्यावरण का, सिंगार जो दिखाई दें।
हरियाली और शुद्धवायु, का बस भरमार दिखाई दें।।
जंगल के जीवों के रक्षक, बनकर तो दिखला दें।
जिससे सुन्दर प्यारा-प्यारा, ये संस्थान दिखाई दे।।
धरती पर ऐसा कर दिखा दो, जिस पर गर्व दिखाई दे।

भारत में स्वास्थ्य शक्ति का बस आधार दिखाई दें।
जड़ी बुटियों औषधियों की, बस भरमार दिखाई दें।।
जागो भाईयों जागो बहनों, काम करो कोई ऐसा।
कोई प्राणी इस धरती पर, ना अस्वस्थ दिखाई दें।।
धरती पर ऐसा कर दिखा दो, जिस पर गर्व दिखाई दे।

नरेन्द्र सिंह
कार्यालय सहायक (प्रशासन)
गोविन्द वल्लभ पंत राष्ट्रीय हिमालयी पर्यावरण संस्थान,
कोसी-कटारमल, अल्मोड़ा, उत्तराखण्ड

तृतीय पुरस्कार

राजभाषा हिन्दी पखवाड़ा के अर्न्तगत आयोजित विभिन्न प्रतियोगिताएं/कार्यक्रम

मानक वर्तनी/हिन्दी अनुवाद प्रतियोगिता-2022

निबन्ध प्रतियोगिता-2022

नोंटिग/ड्राफ्टिग प्रतियोगिता-2022

हिन्दी क्विज प्रतियोगिता-2022

उच्च शिखरीय पादप प्रजातियों का मात्रात्मक अध्ययन